सती मैया का चौरा

भाग 8

भैरव प्रसाद गुप्त

सती मैया का चौरा

भाग 8

मन्ने मन-ही-मन जल रहा था, लेकिन कुछ भी प्रगट न होने देकर उसने कारीगरों का हिसाब किया, उनकी मज़दूरी चुकायी और उन्हीं में से दो को साथ लेकर ससुराल की ओर चल पड़ा।

कारीगरों को बाहर छोडक़र वह अन्दर पहुँचा ही था कि सासु बोलीं-देखो, अपने से डोली मँगाकर, बिना किसी को कुछ बताये, जाने महशर कहाँ चली गयी है।

वह कारख़ाने गयी है,-मन्ने ने सिर झुकाकर कहा-अपना सामान वहीं मँगाया है!

-उसकी आँखों में खटकने वाली तो चली गयी! हाथ चमकाकर सासु बोलीं-अब वहाँ क्या करने गयी है?

-वहीं रहेगी,-मन्ने ने बिना किसी भाव के कहा-वहीं आज खाना पकाकर खायगी। कुछ बर्तन भी उसके लिए दे दीजिए। मैं कल खरीद लूँगा।

सासु उसका मुँह देखने लगीं। मन्ने की इस तरह की बातें उनकी समझ में आनेवाली न थीं। निढाल होकर बोलीं-जाना ही था, तो दो-चार रोज़ बाद क्या नहीं जा सकती थी? ...योंही मेरा घर कितना उदास हो गया है! उससे तुमने कुछ कहा नहीं?

-मेरे या किसी के कहने के मान की है वह?-मन्ने उसी प्रकार बोला-बाहर आदमी खड़े हैं, आप पर्दा कर लीजिए, तो उन्हें अन्दर बुलाकर महशर का सामान उठवा दूँ।

आख़िर सास बोलीं-तो क्या तुम भी यही चाहते हो? तुम उसे मना नहीं कर सकते?

-मेरे मना करने से वह मानेगी**?**

-तो कहो, तो मैं उसका झोंटा पकडक़र घसीट लाऊँ?-क्षुब्ध होकर सासु बोलीं। अब काहे का डर है? मेरी बेटी को तो उसने भाड़ में झोंक ही दिया!

-क्या फ़ायदा?-मन्ने पर जैसे कुछ असर ही न हो रहा था। उसका सारा ग़ुस्सा कहाँ उड़ गया, वह ख़ुद न समझ पा रहा था। बोला-एक दोज़ख़ से छुटकारा पाने के लिए तो यह-सब हुआ। अब कुछ दिन सकून रहे, यही अच्छा। आप पर्दा कर लीजिए।

-उन्हें तो आ जाने दो**,** शायद वही मना लायें**?-**हारकर वे बोलीं।

-उसे किसी का ख़याल होता, तो इस तरह निकल जाती?-मन्ने को भी जैसे अब ज़िद हो गयी। बोला-आख़िर आपको क्या लेना-देना है उससे? छोड़िए उसे उसके हाल पर। मैं आदमियों को बुलाता हूँ।-और वह बाहर के दरवाज़े की ओर मुड़ा।

सासु हक्का-बक्का होकर एक क्षण उसकी ओर देखकर बोलीं-सुनो! खाना मैंने सबका बना लिया है, इस वक़्त तो...

-वह आपके यहाँ का खाना नहीं खायगी,-कहता हुआ मन्ने बाहर जाने लगा, तो उसे पीठ-पीछे सुनाई दिया-मर्द भी क्या शै होते हैं!

बिस्तर-बक्सा उठाकर आदमी चले गये। हाथ में लालटेन झुलाते हुए मन्ने सोयी शम्मू को उठाने के लिए झुका, तो सासु आँखों में आँसू भरके बोलीं-इसे तो रहने दो!

-जाने दीजिए, वर्ना मुझे फिर एक बार आना पड़ेगा,-शम्मू को गोद में उठाते हुए मन्ने बोला-अभी सामान लाने बाज़ार भी जाना है।

लाचार सासु बोलीं-ऐसा है तो मैं खाना ही भेजवाये देती हूँ।

-उसे आपका खाना खाना होता, तो वह मुझसे सामान क्यों मँगाती?

-तो मैं बर्तन के साथ सामान भी भेजवाये देती हूँ। तुम इस रात को...

-वह आपका सामान लेगी?-मन्ने दरवाज़े की ओर बढ़ता हुआ बोला-बरतन भी रहने दीजिए, जाने वह लौटा दे।

वह कारख़ाने के अन्दर पहुँचा, तो देखा, एक मशीन पर अँधेरा छाया है और वह बन्द है। बोला-मँगरू?

मँगरू की आवाज़ आयी-जी सरकार।

-मशीन क्यों बन्द है? तुम्हारी लालटेन क्या हुई?

-आपके घर में उठा ले गयी हैं।

मन्ने का पारा फिर चढ़ गया। वह जल्दी-जल्दी दूसरे आँगन में जाकर बोला-मशीन पर से लालटेन क्यों उठा लायी?

-यहाँ अँधेरे में कब तक रहती?-तुनककर महशर बोली।

-और जो काम का हर्ज़ हुआ?-डपटकर मन्ने बोला।

-काम इन्सान के लिए है कि इन्सान काम के लिए?-महशर बिफरकर बोली-लाओ, इसे मेरी गोद में दो और अपनी लालटेन ले जाओ। कोई चारपाई यहाँ नहीं है क्या?

मन्ने ने शम्मू को उसकी गोद में देते हुए, उसे घूरकर देखा, फिर जाने उसे क्या हुआ कि वह आहिस्ते से बोला-एक खटोला है।

-तो लाओ उसे, बच्ची को सुलाऊँ। जाने इसने खाया है या बेखाये-पिये सो गयी!-अपनी गोद में सटाते हुए महशर बोली-जल्दी आटा, घी और अण्डा ला दो। प्याज और लकड़ी यहीं पास की दुकान में मिल जायगी। तुम्हारा कोई कारीगर यहाँ रहता है कि सब अपने घर चले जाते हैं।

-दो बाहर के हैं, यहीं खाते-पकाते और सोते हैं।

-तो ठीक है, उनसे थाली और तवा माँगकर दे देना। आज काम चल जायगा। कल ख़ुद जाकर मैं बरतन वग़ैरा लाऊँगी!

यह आँगन बेकार पड़ा था। कभी झाड़ू भी न लगी थी। ठेहुने-भर गर्द-गुबार भरा पड़ा था। सब जैसा-का तैसा छोडक़र महशर ने इधर-उधर से खोजकर चार ईंटें इकठ्ठी कीं और चूल्हा जला दिया।

शम्मू के पास खटोले पर बैठा मन्ने चुपचाप सब देखता रहा। ख़ानाबदोशों से किसी भी तरह यह स्थिति अच्छी नहीं थी। किन्तु मन्ने को आज क्यों चूल्हें की वह आँच बड़ी भली लग रही थी। बहुत दिनों के बाद वह महशर को ग़ौर से देख रहा था। आँच के प्रकाश में महशर के सूखे चेहरे से भी जैसे लौ निकल रही हो, जैसे उसका नारीत्व एक शिखा की तरह जलकर इस सुनसान स्थान को प्रकाश से भर रहा हो। ...इस चूल्हे पर अपना एकाकी अधिकार पाने के लिए नारी घोर संघर्ष करती है! वह किससे-किससे इसके लिए नहीं लड़ती, वह कैसी-कैसी लड़ाई इसके लिए नहीं लड़ती और जब तक जीत नहीं जाती, चैन नहीं लेती। ...इस वक़्त की इस शान्त, सुशील, कार्यरत गृहस्थिन को देखकर क्या कोई दो दिन पहले की चुड़ैल महशर की कल्पना कर सकता है? ...किसने इसे चुड़ैल बनाया था? यह तो कभी भी चुड़ैल न थी! ...और मन्ने की आँखें महशर पर से हट गयीं और उसका सिर झुक गया। ...आख़िर क्या हासिल हुआ इस सारे इश्क़, मुहब्बत, टण्टे और झगड़े से? आयशा को जहाँ जाना था, चली गयी और मन्ने को जिस हालत में रहना था, रह गया और दोनों के बीच में बेचारी महशर

पिसकर रह गयी! यह सारी बदमाशी उसने आख़िर क्यों की, जब उसका नतीजा यही होना था? वह क्यों पागल हो गया था? उसने इस बेचारी महशर को इतना क्यों सताया? इस मासूम का क्या अपराध था? ...यह तो उसके साथ शादी करने नहीं आयी थी, वही तो इससे शादी करने आया था। और शादी के बाद क्या उसने इसे नहीं चाहा था? ...वह बख़ूबी उन दिनों को आज भी याद कर सकता था। फिर...फिर उसे क्या हो गया? वह इससे क्यों नफ़रत करने लगा? इसे क्यों बिलकुल भूल गया? इसने उसकी कितनी ख़िदमत की थी, यह उससे कितनी मुहब्बत करती थी! कभी किसी चीज़ की रवादार न हुई, कभी कोई शिकायत न की। उसने इस पर कितना ज़ुल्म ढाया! ...और जब पास में पैसे आये, अच्छे दिन लौटे, तो वह आयशा के चक्कर में फँस गया और इसे दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंकना चाहा। ...आह! अगर सच ही वह-सब हो जाता, तो उसकी क्या हालत होती? क्या सच ही यह जान दे देती? जरूर दे देती! यह हार माननेवाली औरतों में नहीं है! किस तरह इसने सबका नातक़ा बन्द कर दिया और आख़िर आयशा को खदेडक़र ही दम लिया! ...आज इस हालत में भी यह कितनी ख़ुश नज़र आती है! ...माँ-बाप तक का रिश्ता तोडक़र चली आयी है! उनका एक दाना भी खाने से इनकार कर दिया है! जिस घर में माँ-बाप के सामने ही इसकी ज़िल्लत हुई, उस घर में यह क्यों रहे? कितनी खुद्दार है! एक फ़क़ीरनी की तरह ईंटों पर खाना बना रही है। इसे इस रूप में कोई देखे, तो इसे फ़क़ीरनी से ज़्यादा कोई क्या समझे? लेकिन यह इसे मंज़ूर है, ज़िल्लत का रहना-खाना मंज़ूर नहीं! ...यह फ़क़ीरनी बनकर भी अपने मियाँ के साथ रह सकती है। फिर यह कैसे बरदाश्त कर सकती थी कि इसका मियाँ किसी दूसरे का हो? ...तुम्हारे मियाँ की अक्ल मारी गयी थी, महशर, वर्ना क्या वह तुम्हें इतना ज़लील करता, इतना सताता?

शम्मू चिहाकर बाजी-बाजी करती उठ बैठी, तो मन्ने उसे अपनी गोद में लेकर थपकी देने लगा। महशर ने आँखें उठाकर उसकी ओर एक बार देखा और फिर अण्डा फोड़ने में लग गयी।

कितने दिनों के बाद मन्ने ने इस प्रकार शम्मू को अपनी गोद में लिया था! उसे विश्वास ही न हो रहा था कि यह उसी की बच्ची है। ओह, महशर के साथ-साथ वह इसे भी भुला बैठा था! बेचारी मासूम बच्ची! इसे क्या मालूम कि इसके अब्बा को क्या हो गया था! मन्ने उसके सिर और मुँह पर हाथ फेरने लगा और लगा कि उसका दिल रो उठेगा। यह कितनी दुबली और उदास दिखाई दे रही है! जैसे इसकी माँ का साया इस पर भी पड़ गया हो, जैसे यह नन्हीं जान भी एक चपेट में आ गयी हो! ...माफ़ कर, मेरी बच्ची! तेरा बाप पागल हो गया था, अन्धा हो गया था! अब उसे होश आ गया है,

उसकी आँख खुल गयी है! अब वह तुझे कभी न भूलेगा, तुझे बहुत प्यार करेगा, बहुत-बहोत! ...

-उससे पूछो, भूख तो नहीं लगी है?-महशर ने कहा।

मन्ने ने महशर की ओर देखा और फिर अपनी गोद में गहरी-गहरी साँसें लेती हुई शम्मू को। बोला-यह सो रही है।

-तो उसे खटोले पर सुला दो,-महशर हाथों में लोई सँवारती हुई बोली-ख़रेज तैयार हो गयी है, तुम बैठ जाओ, मैं गरम-गरम पराठे निकालती हूँ, तुम खा लो। अख़बार तो तुम्हारे पास होंगे, एक-दो सफ़हे लेते आओ।

शम्मू को गोद से उतारते हुए मन्ने बोला-कहो तो दो-एक प्लेटें वहाँ से मँगा लूँ?

-तुम इन्सान हो कि सुअर? लाहौलविलाक़ूवत! तौबा! थू:!-महशर आग उगलती आँखों से उसे तरेरकर देखती हुई फट पड़ी।

शिखा जैसे फडक़ उठी हो, जैसे सब-कुछ जलाकर वह भस्म कर देगी। मन्ने की साँस जैसे रुक गयी। लेकिन दूसरे ही क्षण वह सम्हल गया और अन्दर जाकर, अख़बार लाकर महशर के सामने रख दिया और सकपकाया हुआ-सा खड़ा हो गया।

महशर एक दुहरा पन्ना फैलाकर, उस पर ख़रेज रखकर बोली-बैठ जाओ,-और तवे पर से पराठा उतारकर अख़बार पर रख दिया।

मन्ने एक आज्ञाकारी बालक की तरह बैठ गया। लेकिन उसका मन तो कोई बालक न था। वह बिचक गया था, खाने पर लग ही न रहा था। ...महशर की एक बात ने जैसे सब गुड़ गोबर कर दिया था। कहाँ तो वह क्या-क्या सोच रहा था और अपने कारनामों पर ख़ुद ही शर्मिन्दा हो रहा था और यह महशर है कि उसे गाली दे बैठी। ...यह औरत क्या उसके नाकों चने चबवायेगी, उसे ज़लील करेगी, उस पर हुकूमत चलायेगी? ...क्या इसका मिज़ाज हमेशा के लिए बिगड़ गया? ...लेकिन अभी तो यह...

-ख़ाते क्यों नहीं हो?-महशर ने एक आँख से उसकी ओर देखते हुए कहा-ठण्डा हो रहा है, दूसरा तैयार है।

मन्ने के मन में आया कि कह दे, भूख नहीं है। लेकिन वह जानता था कि इसके आगे क्या होगा। इसलिए एक ज़रा-सा टुकड़ा तोडक़र उसने मुँह में डाला और मिचराने लगा।

-अच्छा नहीं बना है क्या?-महशर ने एक तीखी मुस्कान के साथ कहा।

-शायद...तुमने इसे अपने ग़ुस्से में तला है। स्वाद कुछ-कुछ...

-क्या मतलब?-दूसरा पराठा अख़बार पर पटकती हुई-सी महशर बोली।

-मतलब यह कि...महशर, अब ग़ुस्सा कूचकर घोंट डालो। जो हुआ सो हो गया। अब मैं चाहता हूँ कि तुम चैन से रहो...

-चैन मेरी क़िस्मत में कहाँ?-भभककर महशर बोली-जिस तरह तुमने मेरा कलेजा भूना है, उसी तरह तुम्हारा भी न भूना, तो बन्दी का नाम महशर नहीं! अब यह आग सारी ज़िन्दगी बुझने की नहीं! इसी में जलकर मुझे राख होना है और इसी में जलाकर तुम्हें भी राख बनाना है! ...खाओ चुपचाप! बात मत बढ़ाओ! तुमने जिस तरह मेरा रोआँ-रोआँ डहकाया है...-और महशर आँख पर दुपट्टा रखकर सिसकने लगी।

लड़ाई ख़त्म हुई, तो मन्ने का रोज़गार भी ख़त्म हो गया। धीरे-धीरे एक-एक कर सभी मशीनें बन्द हो गयीं और कारख़ाना ऐसा दिखाई देने लगा, जैसे उसमें चारों ओर ठठरियाँ-ही-ठठरियाँ पड़ी हों। जहाँ रात-दिन मशीनों का संगीत गूँजता रहता था, वहाँ सन्नाटा छा गया, उदासी बरसने लगी। देखकर मन्ने को रुलाई छूटती। मशीनों की ठठरियाँ जैसे खाने को दौड़तीं।

चीनी के मिलों का सीजन अभी दूर था। लाचार हो उसने गाँव का रुख किया। कुल कमाई क़रीब पच्चीस हज़ार, बदमिज़ाज महशर, तीन बच्चे और ढेर-सारे अनबिके कपड़े, तौलिए, चादरें और चारख़ानों के थान लिये-दिये वह गाँव वापस आ गया।

गाँव में पहले ही शोर था कि मन्ने ने बहुत रुपया कमाया है। उसके गाँव आने की ख़बर पाते ही बहुत-से लोग उससे मुलाक़ात करने आये। सबने उसके साथ स्नेह और सम्मान दर्शाया और उसकी ख़ूब-ख़ूब प्रशंसा की और यह जानने की कोशिश भी की कि वह कितना रुपया कमा लाया है। लेकिन मन्ने कोई ऐसा बेवकूफ़ न था, जो वह अपना भेद सबके सामने खोल देता। वह योंही हँसकर टाल देता, जिसका मतलब यह भी होता कि, अरे साहब, आप यह जानकर क्या करेंगे, सब ख़ुदा की मेहरबानी है!

मन्दी की लपेट में आये गाँव के कुछ महाजन उसके खण्ड का चक्कर लगाने लगे, रुपया है, तो रखकर सेने से क्या फ़ायदा? कोई रोज़गार कीजिए कि कुछ लोगों को काम मिले।

मन्ने भी बेकार था और बेकारी उसे बेहद खल रही थी। इस उम्र में वह फिर युनिवर्सिटी में क्या दाख़िल होता। ले-देकर उसे सीज़न की केन-इन्सपेक्टरी और घर की खेती ही दिखाई देती। कई बार जी में आता कि ज़िले पर कोई दूकान खोल ले, लेकिन यह बात उसके मन में धसती नहीं, वह दूकानदारी क्या करेगा, यह रोग उसके बस का नहीं। फिर क्या करे?

बाबू साहब ने राय दी कि वह और कुछ जगह-ज़मीन खरीद ले। लेकिन इस बात में भी उसका मन रमा नहीं। हाथ का पैसा वह ज़मीन में फँसाना नहीं चाहता था। योंही ज़मीन कौन कम है, लेकिन इससे काम ही कौन-सा बनता है?

घर का ख़र्च काफ़ी बढ़ गया था। हाथ में पैसा था, इसलिए दबाकर ख़र्च करना भी मुश्किल था। छोटी बहन की शादी उसने कर दी थी और वह अपनी ससुराल में थी। लेकिन तीन महीने से ताहिर किसी ग़बन के मामिले में पकड़े जाने के कारण मुअत्तल था और उसकी बीबी और चार बच्चे यहीं आ गये थे। ऊपर से ताहिर मुक़द्दमे की पैरवी के लिए बराबर रुपये की माँग करता था। कई बार ख़ुद आकर वह लड़-झगड़ गया था। यहाँ वह गुड़ न था, जिसमें चींटें लगते, लेकिन मन्ने उसके बाल-बच्चों को कैसे अपने यहाँ से चले जाने को कह देता?

घर में महशर मालकिन हो गयी थी और सभी उसकी बदमिज़ाजी के शिकार थे। वह अपने और अपने बच्चों के लिए अलग अच्छा खाना बनाती, दूध-घी का इन्तज़ाम रखती और मन्ने की बहनों और उनके बच्चों को घर की खेती से पैदा हुए मोटे अनाजों पर छोड़ देती। नतीजे में रोज़ झगड़ा होता। मन्ने सन्तुलन क़ायम करने की कोशिश करता, तो यह झगड़ा और ज़ोर पकड़ लेता। महशर किसी के समझाने के मान की नहीं रह गयी थी। वह कहती-घर की मालकिन मैं हूँ, जैसे मैं चाहूँगी घर चलेगा। जिसको रहना हो रहे, जिसको जाना हो जाय! मेरी बला से!

फिर भी मन्ने अपनी जिम्मेदारियाँ जानता था और उनका निर्वाह भी वह करना चाहता था। वह महशर से लड़ता और जो हो सकता, करता। इससे और चीख़-पुकार मचती। महशर का मुँह खुल गया था। वह गाली देने से भी बाज़ न आती। मन्ने उससे आजिज़ आ गया था, वह कभी-कभी उस पर हाथ भी छोड़ देता।

मन्ने रात-दिन खण्ड में ही रहता। उस पर चिन्ता का भूत फिर सवार हो गया था। रुपया धीरे-धीरे खरकने लगा था। यही हालत रही तो...

रबी बोने के दिन आये, तो उसने फिर घर की खेती की ओर ध्यान दिया। इधर उसकी दिलचस्पी कम हो जाने के कारण घर की खेती की हालत अच्छी नहीं रह गयी थी। उसने नक़द ख़रीदकर बँसफोरों के गदहों से अपने खेतों में खाद डलवायी और भेंड़ें बैठवायीं। पुराने बैल बेचकर एक बच्छी जोड़ी खरीदी। बिलरा बूढ़ा हो गया था, इसलिए उसे निकालकर जवान भिखरिया को रखा और उसी की राय से चारा-कुट्टी और सानी-गोबर के लिए बेवा मुनेसरी को रख लिया। इसकी उम्र अभी बहुत ज़्यादा न थी, बड़ी हडग़ड़ और मेहनती औरत थी। बेवा होकर और फिर दूसरा विवाह न कर जैसे वह मर्द बन गयी थी। उसकी दस-ग्यारह साल की एक लडक़ी, बसमतिया थी। भिखरिया का कहना था कि माँ-बेटी मिलकर बड़ी अच्छी तरह काम कर लेंगी। मियाँ की मेहरबानी से एक गरीबिन की परबस्ती हो जायगी।

बाद में मन्ने को जब मालूम हुआ कि भिखरिया और मुनेसरी में आशनाई है, तो वह मुस्कराकर रह गया। जाने क्यों, उस समय उसका ध्यान बसमतिया की ओर चला गया, जो रंग से तो काली थी, लेकिन नख-शिख से ऐसी, जैसे अजन्ता की चित्रित किसी रमणी की कन्या हो।

और सच ही मुन्नी जब जेल से छुटकर आया, तो सबसे पहले उसकी निगाह बसमतिया पर ही पड़ी। किलककर बोला-अरे मन्ने! इस अजन्ता को तुम कहाँ से पकड़ लाये?

मन्ने हँसी के मारे लोट-पोट हो गया। बोला-अभी तो नहीं, लेकिन ज़रा इसे अपनी उम्र पर आ जाने दो, फिर तो तुम्हारे साहित्यकार की कल्पना को यह छूकर ही रहेगी!

-लेकिन तुम्हारी यह दिलचस्पी मेरी समझ में नहीं आती,-हँसकर मुन्नी बोला-मैं तो तुम्हें बिलकुल पाक-साफ़ समझता था। महशर तो ख़ैरियत से है?

-उनकी ख़ैरियत तुम उन्हीं से पूछना,-मन्ने भी हँसकर बोला-जब से उन्होंने तुम्हारे आने की बात सुनी है, तुमसे मिलने को आतुर हैं।

-मिलना तो मैं भी चाहता हूँ, लेकिन तुम मिलाओ भी तो!

-मेरे मिलाने या न मिलाने से क्या होता है? जब वे चाहती हैं, तो तुमसे मिलकर रहेंगी। कोई ताक़त उन्हें रोक नहीं सकेगी।

-ऐसा?-आश्चर्य से मुन्नी बोला।

-बिलकुल! वह मेरे हाथ से बाहर हो गयी हैं!

-यह कैसी बात कर रहे हो?

-बिलकुल सही कर रहा हूँ! तुम उनसे मिलोगे, तो सब मालूम हो जायगा।

-आख़िर वजह?

-वजह बिलकुल वाज़िब है। मेरी ओर से उनका दिल टूट गया है। लेकिन मैं क्या करता, मजबूर था।

-यार, पहेली मत बुझाओ, कुछ साफ़-साफ़ बताओ!

मन्ने ने अपनी मुहब्बत की पूरी कहानी सुना दी।

सुनकर मुन्नी उदास हो गया। कुछ देर तक चुप रहने के बाद बोला-यह तो बहुत बड़ा ज़ुल्म किया तुमने उस ग़रीब पर। उनका तुमसे बदज़न होना वाज़िब ही है।

-इससे मुझे कब इनकार है?-मन्ने गम्भीर होकर बोला-लेकिन उसके बाद, बिगड़ी बनाने की हर कोशिश करके मैं हार मान बैठा हूँ। घर जहन्नुम हो गया है। हमेशा वे कमान पर तीर चढ़ाये बैठी रहती हैं। और...शायद यह उसी का नतीजा है कि इस तरह की मेरी दिलचस्पी पर तुम्हारी नज़र पड़ रही है। यार, कोई क्या करे?

-तुमने तो, दोस्त, सब चौपट कर दिया!-दुखी होकर मुन्नी बोला-महशर को, ख़तों से जैसा मैंने महसूस किया है, तुमसे इन्तहा मुहब्बत थी। और तुमने उनके साथ यह सलूक किया। अब चाहते हो, वह सब भुला दें। भला यह कैसे मुमकिन है :

बड़ी एहतियात तलब है यह जो शराब सागरे दिल में है

जो भरी रही तो भरी रही जो छलक गयी तो छलक गयी

सच बोलो, क्या तुम आयशा को बिलकुल भूल गये हो?

मन्ने कुछ देर के लिए खामोश हो गया। उसके चेहरे पर एक रंग आया और एक रंग गया, फिर वह उदास हो गया। बोला-तुम से झूठ नहीं कहूँगा, आयशा को ताज़िन्दगी मैं नहीं भूल सकता! उससे मुझे जो मिला, उसका स्वाद आज भी मेरे रोम-रोम में बसा है! ...लेकिन साथ ही एक बात और मैं तुमसे कहूँगा कि जहाँ तक अख़लाक़ का ताल्लुक़ है महशर से आयशा का मुक़ाबिला नहीं हो सकता। आयशा बड़ी चालाक और

ख़ुदग़र्ज़ थी। और यही बातें जब मुझ पर अयाँ हुईं तो मैंने उसकी ओर से मुँह फेरना शुरू किया। फिर भी मैं उसे भूल नहीं सकता, वह किसी-न-किसी रूप में मेरी यादों में ज़रूर-ज़रूर बनी रहेगी!

-फिर बेचारी महशर क्या करे? इसमें उसकी क्या ग़लती है?

-ग़लती कोई न हो, फिर भी जहाँ तक हमारी ख़ानगी ज़िन्दगी का सवाल है, क्या वह उसे सुधार नहीं सकती? मियाँ-बीबी के बीच बदले का जज़्बा हो, यह कितनी ख़तरनाक बात है, वह यह बिलकुल नहीं समझती।

-लेकिन उनके अन्दर यह जज़्बा तुम्हीं ने पैदा किया है?

-किया है, तो अब मैं क्या करूँ? इसका अब इलाज क्या है?

-उनके अन्दर फिर विश्वास पैदा करो।

-मैं सब करके हार गया हूँ।

-सच कहते हो? मुझसे झूठ मत बोलना!

मन्ने ज़रा देर के लिए ख़ामोश हो गया। फिर बोला-तुमसे झूठ नहीं कहूँगा। मैंने अपना फ़र्ज समझकर, उनके सकून के लिए ही सब किया है। ...जहाँ तक मेरा ताल्लुक़ है, मुझे उनकी सोहबत में बिलकुल मज़ा नहीं आता। अब मैं तुमसे क्या बताऊँ, मैं अपने पर जब्र करके...

-आयी बात वही न!-मुन्नी बोला-फिर तो तुम दोनों का ख़ुदा ही मालिक है! ...सच बताना, आयशा की शादी के बाद तुम उससे फिर कभी नहीं मिले?

-सिर्फ़ एक बार छुपाकर कानपुर गया था। फिर उसके बाद कभी जाने का मन नहीं हुआ।-और मन्ने ज़ोर से हँस उठा।

मुन्नी उसका मुँह ताकने लगा। बोला-हँसे क्यों?

-मैंने आयशा से पूछा, कैसी हो? वह बोली, ख़ुश हूँ। मैंने पूछा, वो कैसे हैं? वह बोली, बड़े पुरख़ुलूस, बड़े ही खिदमतगुज़ार हैं। मैंने कहा, ख़िदमतगुज़ार से तुम्हारा क्या मतलब है? सुनकर वह ऐसी हँसी हँस पड़ी, जिसे मैं कभी भी न भुला सकूँगा। बोली, वो मेरी बड़ी ख़िदमत करते हैं। खाना ख़ुद बनाते हैं। बर्तन तक मुझे साफ़ नहीं करने देते

हैं, कहते हैं, तुम्हारे हाथ मैले हो जाएँगे, नाख़ून की मेंहदी उड़ जायगी। हमेशा मेरा मुँह जोहते रहते हैं। आमदनी ज़्यादा नहीं, लेकिन दूध और फल का मेरे लिए बराबर इन्तज़ाम रखते हैं। कहते हैं, दूध और फल से मलाहत बढ़ती है और रंग खुलता है। ख़ुद गाढ़ा पहनते हैं और मेरे लिए बेहतरीन कपड़े लाते हैं, पावडर, क्रीम, रूज, इत्र और अच्छे तेल लाते हैं। कहते हैं, तुम्हारे हुस्न में मुझे ख़ुदा का जलवा नज़र आता है, इसे सजारा-सँवारना मेरा मज़हबी फ़र्ज़ है। अपने हाथ से मेरे बालों में तेल डालते हैं और कंघी करते हैं। ...क्या-क्या गिनाऊँ! इतना मान कोई किसी को क्या देगा? मेरी क़िस्मत पर कौन लडक़ी रश्क नहीं करेगी?

-कोई दीनवाला आदमी मालूम देता है,-मुन्नी ने कहा।

-बिलकुल ज़नमुरीद!

-लेकिन, यार, मुझे तो तुम पर ताज्जुब है!-मुन्नी बोला-तुम्हारे-जैसा खूसट आदमी भी कैसे इश्क के चक्कर में पड़ गया? मालूम होता है, जेब गरम होने पर दिल में भी गर्मी आ जाती है!-और वह हँस पड़ा-सुना है, तुमने बड़ी गाढ़ी रक़म काटी है! क्यों नहीं प्रकाशन का काम शुरू करते? अच्छा-ख़ासा फ़ायदे का धन्धा है। मेरे लिए भी कुछ काम मिल जायगा। मैं अब बेकार ही तो हूँ!

-क्यों? अब क्या तुम अपनी नौकरी पर नहीं जाओगे?

-नहीं। देख लिया काफ़ी! सब ढोंग है। नाम सेवा, और साले ऊपर के अधिकारी खाते हैं मेवा! सारा आदर्श नीचे के कर्मचारियों के लिए ही है! ...फिर मेरे घर की हालत तो देख ही रहे हो। पिताजी कहते हैं, पास ही रहो, हमें सहारा रहेगा।

-तुम्हें प्रकाशन कार्य का कुछ अनुभव है?

-हाँ, थोड़ा-बहुत है। वहाँ मैं प्रकाशन-विभाग में भी काम करता था।

-तो बनाओ अपनी योजना। मेरे पास कुछ रुपया है। किसी-न-किसी काम में तो लगाना ही है। मेरी राय है कि पहले ज़िले पर एक प्रेस खोला जाय।

-बहुत अच्छा। लेकिन क्या इतना रुपया है तुम्हारे पास?

-कितना लगेगा कम-से-कम?

-दस-पन्द्रह हजार लगेगा।

-फिर तो हो जायगा।

-यार, तुमने इतना रुपया कमा लिया?

मन्ने हँसकर रह गया।

थोड़ी देर बाद मुन्नी बोला-कैलास से भेंट हुई थी?

-हाँ, एक दिन शाम को ताल पर भेंट हुई थी। मोटाके यों पलंजर हो गया है, इतनी बड़ी तोंद निकल आयी है।

-क्या हाल-चाल हैं उसके?

-बहुत ख़राब। कहता था, इंजीनियरी पास करने के बाद बिहार की एक चीनी मिल में नौकरी की थी, लेकिन महीने बाद ही छोडक़र अपनी पटना की आढ़त में चला गया। वहाँ ख़ूब खाना और ख़ूब सोना, यही दो काम थे। वहीं फूलकर हाथी हो गया। लाला चिठ्ठियाँ भेज-भेजकर परेशान हो गये कि कहीं नौकरी कर ले। लेकिन वह वहाँ से टस-से-मस न हुआ। गौना कराने गाँव लौटा, तो फिर यहीं का होकर रह गया। तीन लड़कियों का बाप हो चुका है, एक लडक़े की तमन्ना है। ...खाना और सोना, यही दो काम रहे गये हैं उसके लिए। सुना है, लड़ाई ख़त्म होते ही अचानक लाला का दीवाला निकल गया। पटना की आढ़त बन्द हो गयी। कइयों का क़र्जा लद गया है। लाला बेचारे ने यहाँ कुछ खेती-वेती शुरू कर दी है। फिर भी कैलास को देखो, तो लगता है कि किसी बात का ग़म ही नहीं है।

-ऐसा बोदा निकलेगा, कौन सोच सकता था?

-कहता था, मोली साहब, क्या सच ही आप हजारों रुपये कमा लिये हैं?-और मन्ने हँस पड़ा।

-हैरानी तो मुझे भी कम नहीं होती,-मुन्नी बोला-शायद इसी चक्कर में तुमने पढ़ाई भी छोड़ दी?

-है कुछ ऐसा ही,-मन्ने ज़रा उदास होकर बोला-लेकिन अब भी जी करता है कि फ़ाइनल और ला एक साथ ज्वाइन कर लूँ। कोई अच्छी नौकरी अब मुझे क्या मिलेगी। लेकिन यार, मेरे लिए वक़ालत कैसी रहेगी?

-ख़ूब चलेगी, डिबेटर तो तुम हमेशा के अच्छे रहे हो। ख़ूब चाँदी काटोगे!

-क्या बताऊँ, चाहता तो बहुत हूँ, लेकिन मेरे घर की हालत तो तुम जानते ही हो, बारह प्राणियों का ख़र्च है आजकल! लडक़ी को अच्छी तालीम दिलाना चाहता था, लेकिन मेरे सोचते-ही-सोचते वह इतनी बड़ी हो गयी और मैं कुछ न कर सका। यहाँ देहात में क्या हो सकता है? शहर में भेजूँ और किसी हास्टल में उसका इन्तजाम कराऊँ, तो पचास-साठ महीने से कम ख़र्च क्या होगा।

-लेकिन तुम्हें उसे पढ़ाना जरूर चाहिए!

-हाँ, चाहिए तो जरूर, लेकिन मैं क्या करूँ? शहर में रहना होता, तो...

-इतने दिन तो शहर में रहे तुम?

-ये दिन मेरे कैसे बीते हैं, इसकी कल्पना तुम नहीं कर सकते। मुझे एक पल को भी चैन नसीब नहीं हुआ। बेचारी लडक़ी की ओर मैं ध्यान ही नहीं दे सका। वह ऐसी संजीदा और चुप्पी हो गयी है कि कभी-कभी मेरी ओर ऐसे देखती है, जैसे गाय कसाई की ओर देखती है।

-यह तुम्हारी ख़ानगी ज़िन्दगी की तासीर है। क्या करोगे? फिर भी मैं यही राय दूँगा कि उसे पढ़ाओ, ख़र्च की फ़िक्र न करो।

-कैसे न करूँ? भविष्य देखता हूँ तो अन्धकार के सिवा कुछ दिखाई नहीं देता। मेरी क़िस्मत में ही कहीं कोई ज़बरदस्त खोट है, वर्ना दो-दो बहनें अपने बच्चों के साथ मेरे मत्थे क्यों आ मढ़तीं? एक तो ख़ैर बेवा ही हो गयी, लेकिन दूसरी...ताहिर जैसा कमीना और बेग़ैरत रिश्तेदार मुझे मिला है, उसे देखते हुए मुझे लगता है कि अन्त में उसके बाल-बच्चों का भार भी मेरे ही ऊपर पड़ेगा। आख़िर इतने बच्चों की परवरिश, पढ़ाई-लिखाई क्या कोई मामूली ज़िम्मेदारी है?

-और तुम्हारी छोटी बहन कैसी जगह पड़ी है?

-जगह तो अच्छी ही समझो। वे कोतवाल हैं।

-कोतवाल?

-हाँ, उम्र ज़्यादा ज़रूर है, लेकिन बहुत ही तन्दुरुस्त आदमी हैं। शादी के पहले उन्हें देखने गया था, तो अपनी आँख से देखा कि आँगन में भरे हुए बीस घड़ों के कण्डाल को उन्होंने गोद में भरकर उठा लिया था। बड़े ही हट्टे-कट्टे और मज़बूत आदमी हैं,

जिस्म से भी और अख़लाक़ से भी। अपनी लाइन में उनकी बड़ी शुहरत है, रिश्वत नहीं लेते, झूठ नहीं बोलते, ईमानवाले आदमी हैं।

-तो इतनी उम्र तक...

-उनकी पहली बीबी का पाँच साल पहले इन्तक़ाल हो गया था। कोई सन्तान न थी। ...क्या बताऊँ, यार, तुम तो जानते ही हो, मैं वहाँ बहन को देने से बहुत हिचका, लेकिन करता क्या? ख़ैर, वह सुखी है। एक बच्ची भी हुई है और ख़त आया है कि फिर...उसकी ओर से मुझे कोई परेशानी नहीं है। कोतवाल साहब मुझे भी बहुत मानते हैं। कभी तुम्हें उनके पास ले चलूँगा। बड़े ही ज़िन्दादिल आदमी हैं, अदब में भी ख़ासी दिलचस्पी रखते हैं। ...यह तो हुई हमारी, अब अपनी कुछ सुनाओ।

-मेरा क्या? वही है चाल बेढंगी, जो पहली थी वो अब भी है! दो बार सत्याग्रह करके जेल गये। तीसरी बार बयालीस में पकड़ लिये गये और पाँच साल की सज़ा हो गयी। ...अबकी जेल में ख़ूब जमकर पढ़ाई हुई है। तीन पुराने क्रान्तिकारी भी हमारी ही जेल में थे। ...और अब मैं कम्युनिस्ट होकर जेल से निकला हूँ।

-कम्युनिस्ट?

हाँ, गाँधीवाद में मेरी आस्था न रही। ...यार, तुम राजनीति में दिलचस्पी क्यों नहीं लेते? तुम्हारी समझ...

-समझ की कोई कमी नहीं है। और मैं जानता हूँ कि अगर मैं राजनीति में कूदूँ, तो कितनों को पीछे छोड़ जाऊँ। लेकिन मैं घर का अकेला आदमी हूँ। काश, मेरे एक भाई होता, तो मैं तुम्हें राजनीति करके दिखा देता! ये तुम्हारे भाई साहब भी कोई राजनीति करते है, सारी ज़िन्दगी उन्होंने इसमें खपा दी, और वही वालण्टियर-के-वालण्टियर ही बने रहे, नेताओं की पूँछ से बँधे रहे! उन्हें तो दस साल की सज़ा हुई थी न ?

-हाँ! ...यार, तुम्हारे दिमाग़ पर इस वक़्त चर्बी छायी है। मेरा मतलब राजनीति करने से न था। मेरा तो कहना यह था कि देश की आज़ादी की लड़ाई...

-उसके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। लेकिन मुझे अफ़सोस है कि उसमें मैं कोई हिस्सा नहीं ले सकता। अगर ले सकता, तो तुम देखते...

-सो तो मुझे मालूम है, इसीलिए तो कहता था।-मुन्नी ने आँखें नीची करके कहा-यार, तुमसे बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं। कभी सोचता था, तुम अदीब बनोगे और अदब की

ख़िदमत करोगे; कभी सोचता था, तुम राजनीति में हिस्सा लोगे और मुल्क की ख़िदमत करोगे; कभी सोचता था...

-छै सालों में वह-सब हवा हो गया। तुम इस पर विश्वास करोगे कि इस बीच अख़बारों के सिवा मैंने कुछ भी नहीं पढ़ा है। रुपया कमाने का ऐसा भूत मुझ पर सवार हो गया था कि...

-वह तो अब भी सवार है! मुझे बड़ा अफ़सोस है कि तुमने अपनी ज़िन्दगी को इस रास्ते पर लगा दिया।

-मुझे भी बेहद अफ़सोस होता है,-मन्ने ने भी सिर झुकाकर कहा-लेकिन मैं करता क्या, मजबूर था। मेरी ज़िम्मेदारियाँ...

-ज़िम्मेदारियाँ किसकी नहीं है? सब इसी तरह करने लगें...

-कोई मुस्तक़िल सिलसिला लग जाय, तो शायद मैं भी कुछ कर गुज़रूँ। मैं अभी निराश नहीं हूँ।

-सवाल तो दिल की आग का है?

-उसकी मुझमें कमी है, ऐसा तुम सोचते हो?-हँसकर मन्ने बोला-ऐसी बात नहीं है, दोस्त! कभी सोचता था, कोई अच्छी नौकरी मिल गयी, तो आराम से फ़ुरसत के वक़्त अदब की ख़िदमत करेंगे। अब उसकी कोई उम्मीद नहीं रही। अब सोचता हूँ, किसी रोज़गार का कोई सिलसिला लग जाय, तो...

-ये तो बहुत बड़ी-बड़ी शर्तें हैं, प्यारे!-हँसकर मुन्नी बोला-यह तो वही हुआ कि न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेंगी!

-नहीं, ऐसा निराशावादी मैं नहीं हूँ!-दृढ़ता के साथ मन्ने बोला-तुम जानते हो, मैं हिम्मत हारनेवाला आदमी नहीं हूँ। मैं धुन का पक्का हूँ। जिस काम के पीछे पड़ जाऊँगा, उसे पूरा करके ही दम लूँगा! एक दिन तुम देखोगे...

-कौन जीता है तेरी जुल्फ़ के सर होने तक!- और मुन्नी ज़ोर से हँस पड़ा।

-हँस लो, हँस लो!-आगे को सिर हिलाता हुआ मन्ने बोला-मेरी तरह ज़िम्मेदारियाँ तुम्हारे सिर पड़ी होतीं, तो छठ्ठी का दूध याद आ जाता, बेटा!

-बिगड़ो मत,-ठण्डे स्वर में मुन्नी बोला-अब बताओ महशर से कब मुलाक़ात करा रहे हो?

तभी शम्मू ने कमरे में आकर कहा-सलाम, चच्चा।

-खुश रहो, बेटी!-मुन्नी ने उसे अपनी ओर खींचते हुए कहा।

-बाजी ने सलाम कहा है,-और मुठ्ठी खोलकर उसके सामने करते हुए कहा-उन्होंने आपके लिए यह ख़त भेजा है।

ख़त लेते हुए मुन्नी ने कहा-उन्हें भी मेरा सलाम कह देना।

-कह देंगे।

-अपनी बाजी से जाकर कहो,-मन्ने बोला-चच्चा के लिए चाय-नाश्ता भेजें।

-नहीं, यार,-मुन्नी ख़त खोलकर पढ़ते हुए बोला-अब टहलने चलेंगे।

-वे ख़ुद ही नही मानेंगी। जा बेटा, जल्दी भेजवा तो!

शम्मू दौड़ती हुई भाग गयी।

-क्या लिखा है?-मन्ने ने आँखें झपकाते हुए कहा।

-लो, ख़ुद पढ़ लो। उन्होंने तो तुम्हारे ही ऊपर छोड़ दिया है।

ख़त पढक़र, उसे फाड़ते हुए मन्ने बोला-कितना अच्छा होता कि तुम गोरखपुर आये होते!

-यार, बिना शर्त के तुम्हारी कोई बात ही नही होती!-बिगडक़र मुन्नी बोला।

-बिगड़ो नहीं। ये सब सामाजिक बन्धन हैं, टूटते-टूटते टूटेंगे। तुम कम्युनिस्ट हो गये, तो इसका यह मतलब थोड़े ही है कि सारी दुनियाँ ही कम्युनिस्ट हो गयी!-हँसकर मन्ने बोला-तुम्हें सही-सही अन्दाज़ा ही नहीं कि हमारा समाज कितना दक़ियानूस है।

-दक़ियानूस तुम ख़ुद भी हो, वर्ना...

-नहीं, ऐसी बात तो नहीं लेकिन...

-यहीं लेकिन तो तुम्हारी कमज़ोरी का आईना है! ...अरे यार! इस अगर-मगर, लेकिन-परन्तु की सीमा को कहीं भी तो तुम लाँघते और अपने व्यक्तित्व की शक्ति दिखाते!

-काश, तुम समझते कि मेरे दिल में क्या-क्या वलवले हैं, लेकिन...

-फिर वही लेकिन? ...यार, तुम आदमी हो कि आदमी कि पूँछ? अरे, किसी भी दिशा में तो तुम अपना जलवा दिखाओ! राजनीति में तुम नहीं आओगे, मुल्क की ख़िदमत तुम नहीं करोगे, अदीब तुम नहीं बनोगे, समाज के दक़ियानूसी खयालों के ख़िलाफ आवाज़ तुम नहीं उठाओगे, तो इतना पढ़-लिखकर, इतने योग्य होकर तुम करोगे क्या? अगर तुम्हारा यह ख़याल है कि यह-सब करने के लिए आदर्श परिस्थिति की ज़रूरत है और तुम उसका निर्माण करके ही इस-सब में कूदोगे, तो यह सिर्फ़ तुम्हारी ख़ामख़याली है! वह आदर्श परिस्थिति कभी आनेवाली नहीं! उसके निर्माण में ही तुम्हारी ज़िन्दगी ख़त्म हो जायगी और तुम फिर भी अपने को प्रतिकूल स्थिति में ही पाओगे और फिर यह सोचोगे कि जब यही अन्त होनेवाला था, तो बेकार के लिए इतना दर्दे-सर मोल क्यों लिया और फिर एक अफ़सोस के सिवा कुछ हाथ नहीं लगेगा। ...तुम ऐसे हिसाबी होगे, इसकी तो मैंने कभी कल्पना ही नहीं की थी। इस तरह फूँक-फूँक कर क़दम रखोगे, तो कितनी दूर जा सकोगे?

-कहना बहुत आसान है, लेकिन करना मुश्किल है! मेरी मुश्किलें...

-तुम्हारी क्या मुश्किलें हैं? इतना रुपया कमाया है, बाप-दादा की छोड़ी हुई इतनी जायदाद है, इतने पढ़े-लिखे आदमी हो। ...ज़रा उनकी तो कभी सोचो, जिनके यहाँ सुबह खाना बना, तो शाम का ठिकाना नहीं? ...यार, मेरी तो समझ में ही नहीं आ रहा कि तुम्हें क्या हो गया है! दो बहनें क्या आ गयीं, तुम्हारे सिर पर पहाड़ टूट गया। यही था तो तुमने बेवा बहन की फिर शादी क्यों नहीं करा दी? ताहिर मियाँ के यहाँ उनके बाल-बच्चों को क्यों नहीं पहुँचा देते? और फिर अगर तुम्हें अपने ही बाल-बच्चे भारी लग रहे हों, तो मेरी राय है कि तुम उन्हें ज़हर दे दो! फिर सबसे छुट्टी पाकर तुम रुपये जोड़ने का धन्धा करो!-कहकर, गुस्से में भुना हुआ-सा मुन्नी उठकर कमरे से बाहर हो गया।

मन्ने सन्नाटे में आ गया था। वह मुन्नी को रोक भी न पाया। उसे लग रहा था कि सच ही वह शून्य हो गया है। ...उसने जो-कुछ अब तक किया, सब शून्य है। ...इतनी परेशानी, इतनी तकलीफ़ें, इतनी मेहनत, इतना संघर्ष...नौकरी...रिश्वत...रोज़गार...रुपया...सब व्यर्थ हो गया, कुछ भी हासिल न

लगा और ज़िन्दगी ऐसी रह गयी कि एक ऐसा आदमी उसे फटकारकर चला गया, जिसकी सांसारिक सफलता केवल शून्य है, लेकिन जिसने कुछ ऐसा किया है, जिसका मूल्य धन नहीं आँक सकता। कितनी आत्म-शक्ति है इस आदमी में। किस लापरवाही से यह बात करता है! कैसा विद्रोही है यह। ...तीस रुपल्ली के लिए दूर-दराज़ चला गया। किसको यह मालूम नहीं कि वह हर महीने बीस रुपये अपने बाप को भेज देता था और दस रुपये में अपना ख़र्च चलाता था। ...जाने कैसे बचाकर उसने सौ रुपये महशर को भेजे? ...अब इसका घर बिलकुल बरबाद हो गया है। ...विपत्ति का मारा बाप बूढ़ा हो गया है। ...बड़ा भाई बयालीस में मारा गया। ...मँझला सिर्फ़ राजनीति करता है। ...घर में जो कुछ था, यहाँ के लीगियों और पुलिस ने लूट लिया। ...इतने पर भी इसका यह हाल है! माथे पर बल नहीं! ...कम्युनिस्ट हो गया है! ...बाप, रे बाप! यह कैसी छाती है!

और एक मन्ने। ...नहीं-नहीं, मुन्नी से उसका कोई मुक़ाबिला नहीं! मुन्नी तो किसी दीवार को तसलीम ही नहीं करता और वह है कि हर आन पर अपने सामने एक दीवार खड़ी देखता है और उसे तोड़ गिराने में ही अपनी सारी शक्ति खर्च कर देता है और सिर उठाकर बड़े गर्व से वह शेर पढ़ता है। ...आख़िर इन दीवारों का कब अन्त होगा? वह कब तक अपनी ही ज़िन्दगी की उलझनों में फँसा रहेगा? शायद इनका कभी अन्त न हो, शायद ये उलझनें कभी न सुलझें। फिर? क्या वह इसी तरह अपना और अपने लोगों का पेट भरते-भरते ही ख़त्म हो जायगा, वह कभी भी इस धन्धे से निश्चिन्त होकर अपने मन की न कर सकेगा, अपने समाज और अपने मुल्क के लिए कुछ न कर सकेगा? ...माना, अपना, अपने लोगों का पेट भरना ज़रूरी है, इसके लिए किया जानेवाला संघर्ष भी कम महत्व नहीं रखता। लेकिन इसके क्या माने कि इन्सान इसी में अपने को डुबोकर अपने सारे सामाजिक कत्र्तव्यों को चूल्हें में झोंक दे? वह समझदार आदमी है, पढ़ा-लिखा आदमी है, अपने सामाजिक कत्र्तव्यों का उसे ज्ञान है, फिर भी वह इस ओर से इस तरह आँखें क्यों मूँदे रहा? क्या अपने जीवन के संघर्षों के साथ-साथ वह अपना यह दायित्व भी यथाशक्ति नहीं निबाह सकता था? ...देश की आज़ादी की लड़ाई में हज़ारों मारे गये, लाखों ने जेल की यातनाएँ सहीं, अनगिनत लोगों के घर बरबाद हो गये, कितनों ने ही अपनी सरकारी नौकरियाँ छोड़ीं...इन लोगों के साथ क्या अपना जीवन-संघर्ष नहीं था, अपनी व्यक्तिगत समस्याएँ न थीं, अपनी और अपने बाल-बच्चों का पेट न था? ...क्या मुन्नी भूखों रहता है? क्या अपने लोगों के लिए वह कुछ नहीं करता? फिर भी अपने सामाजिक दायित्वों से वह कतराता तो नहीं, बल्कि दस क़दम आगे बढक़र वह समाज की बेहतरी के लिए और भी खतरों को अपने ऊपर ओढ़ता है। कांग्रेस का इस समय मन्त्रि-मण्डल है...कल देश स्वतन्त्र होता

है, तो कांग्रेस की हुकूमत होगी, लेकिन कम्युनिस्ट...अभी इनको कितनी गालियाँ मिल रही हैं, इन्हें बयालीस का ग़द्दार कहा जाता है, 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की पीठ में छुरा भोंकनेवाला कहा जाता है। सुनकर दु:ख के साथ हँसी भी आती है कि आम लोगों की बुद्‌घि मोटी होती है, लेकिन बड़े-बड़े नेताओं की भी बुद्‌घि क्यों सठिया गयी है? ...और गम्भीर बातों को छोड़ भी दिया जाय, तो क्या यह मोटी बात भी समझना बहुत कठिन है कि 'लाखों करोड़ों' लोग जिस 'क्रान्ति' में कूद पड़े थे, उस 'क्रान्ति' को मुट्‌ठी-भर कम्युनिस्टों ने कैसे विफल कर दिया? क्या मुठ्‌ठी-भर कम्युनिस्ट की ताक़त 'लाखों-करोड़ों क्रान्तिकारियों' से बढ़-चढक़र थी? क्या ये मुट्‌ठी-भर कम्युनिस्ट इन 'क्रान्तिकारियों' के साथ होते, तो यह 'क्रान्ति' सफल हो जाती? ...झूठ बात है! न तो यह कोई क्रान्ति थी, न इसके पीछे कोई क्रान्तिकारी संगठन था, न इसे सफल होना था। यह तो सिर्फ़ एक ग़ुस्से का उबाल था। जब वह आन्दोलन खत्म हुआ, तो उसमें भाग लेने वालों की पस्ती देखने-लायक़ थी। नेता लोग तो जेल में थे, उन्हें क्या मालूम कि उस वक़्त उन 'क्रान्तिकारियों' की क्या स्थिति थी, उस 'क्रान्तिकारी आन्दोलन' को कैसा लक़वा मार गया था! ...इसी गाँव में उस समय की फ़िज़ा याद आती है। ...क़स्बे की चौकी, थाना बीजगोदाम और डाक बंगला जलाने और लूटने के लिए राधे बाबू के साथ कम-से-कम पाँच सौ जवान तो गये ही होंगे। उस वक़्त उनका जोश, उनका ग़ुस्सा, उनका साहस, उनकी शक्ति देखने की ही चीज़ थी। उनके नारों से आसमान गूँज रहा था। ...सुना गया कि क़स्बे में सरकारी इमारतों और सामानों को लूट-फूँककर चारों ओर के देहातों से इकठ्‌ठा हुआ एक बहुत बड़ा जत्था ज़िले के लिए रवाना हो गया था। ...नौ दिन तक इस गाँव के लोगों ने राधे बाबू और दूसरे नौजवानों का इन्तज़ार किया। उस समय इस गाँव की प्रतीक्षा देखने की चीज़ थी। गाँव के लोग राधे बाबू के घर पर रात-दिन भीड़ लगाये हुए थे, अपने नेता की खोज-ख़बर के लिए सारा गाँव बेचैन था। लीगी भींगे सियार की तरह अपने घरों में घुसे हुए थे कि अब उनकी जान की ख़ैर नहीं! ...कांग्रेसी अपना ग़ुस्सा अँग्रेजों को भगाकर इन्हीं पर तोड़ेंगे? ...लेकिन फिर क्या हुआ? नौवें दिन राधे बाबू रात को लौटे, तो बदहवास थे, फ़ौज आ रही है! ...अपने बचाव का इन्तज़ाम करो। ...तब लोग किस तरह दुम दबाकर उनके घर के सामने से भागे थे! राधे बाबू जानते थे कि सरकार का क़हर सबसे पहले उन्हीं के ऊपर टूटेगा, वही इस गाँव के काँग्रेसी नेता थे। उन्होंने अपने घर के लोगों से कहा कि वे घर का सब माल-मता कहीं खिसका दें, शायद उनका घर फौजी लूटकर जला डालें और सब लोग गाँव छोडक़र कहीं भाग चलें। ...पास-दूर के पड़ोसियों के यहाँ दौड़-दौडक़र माँ-बाप-भाई ने सामान रखने की बिनती की, लेकिन उस वक़्त उनका सामान भी राधे बाबू से कम खतरनाक न था, एक भी रखने को राज़ी न हुआ...आख़िर जान से प्यारी क्या चीज़ होती है, वे लोग घर में ताला लगाकर रातो-रात गाँव छोडक़र

भाग गये। किसी ने भी न पूछा कि इस बारिश में, इस अन्धकार में, इस काँदों-पानी में हेलते-भींगते हुए वे कहाँ जाएँगे? ...दूसरे दिन सच ही फौज आ गयी थी...और कल के माँद में छुपे हुए सियार बाघ बनकर निकल आये थे। लीगियों ने फौज का ख़ैरकदम किया था और राधे बाबू के बारे में सब-कुछ बता दिया था और फौजियों के साथ मिलकर उनका घर लूट लिया था! ...उनके घर पर एक नोटिस टाँग दी गयी थी कि राधे बाबू छः महीने के अन्दर हाज़िर न हुए, तो घर नीलाम पर चढ़ा दिया जायगा। ...पता नहीं क्यों, उनका घर जलाया नहीं गया। शायद जुब्ली ने ही कहा था कि घर जलाने से क्या फ़ायदा होगा, इसके किवाड़ वग़ैरा सरकार के ख़ैरख़ाहों के काम आ जाएँगे। ...राधे बाबू के दरवाजे पर पुलिस बैठाकर फौज आगे बढ़ गयी थी। ...प्युनिटिव टैक्स लगने लगा तो सारे हिन्दू ही नहीं राधे बाबू की बिरादरी के लोग भी जुब्ली और नूर के पास सिफ़ारिशें ले-लेकर पहुँचने लगे। जिन्होंने उनकी मुठ्ठी जितनी गरम की, उन पर जुब्ली और नूर ने उतना ही कम टैक्स लगवाया। ...और भी गाँवों से खबरें मिल रही थीं, ज़िले से भी खबरें आ रही थीं। सब जगह यही हाल था। यह था 'क्रान्ति' का अन्त और 'क्रान्तिकारियों' का हाल! यह थी 'बयालीस की क्रान्ति', जिसकी पीठ में कम्युनिस्टों ने छुरा भोंका था! राम-राम! इससे बड़ी झूठ बात भला क्या हो सकती है...

फिर अगर यह कांग्रेस-चालित क्रान्तिकारी आन्दोलन था, तो गाँधीजी ने इस क्रान्तिकारी आन्दोलन की ज़िम्मेदारी से अपने को बरी करने की क्यों घोषणा की और इसके सारे परिणामों का उत्तरदायित्व सरकार पर ही क्यों मढ़ दिया?

और फिर जेल से छूटते ही नेहरू ने इस आन्दोलन की सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर क्यों ओढ़ ली**?**

ये महान् नेता हैं, इनसे कोई सवाल नहीं पूछा जा सकता, इनके विषय में कोई सवाल नहीं उठाया जा सकता! बदमाशी तो सारी कम्युनिस्टों की थी, जिन्होंने 'देश की क्रान्ति' के साथ ग़द्दारी की!

फिर इस 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के पीछे हमारे राष्ट्र के महान् कर्णधारों की समझ क्या थी? क्या महात्मा गाँधी की यह समझ न थी कि युद्घ-संकट में अंग्रेज भारत का सहयोग चाहते हैं और वे इस सहयोग के मूल्य-स्वरूप भारत की आज़ादी स्वीकार कर लेंगे? उन्होंने वायसराय से क्या यह आश्वासन नहीं चाहा था कि भारत सहयोग दे, इसके पहले वे वचन दें कि युद्घ के बाद भारत को आज़ादी मिल जायगी? लेकिन वायसराय ने यह आश्वसान देने से इन्कार कर दिया। तभी क्यों अंग्रेजों पर, उनके

संकट-काल में, दबाव डालने के लिए 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का सूत्रपात हुआ? अगर यह बात सही है और इतिहास इसके खरेपन की गवाही देता है, तो क्या ये दो सवाल किसी भी इतिहास के साधारण-से-साधारण विद्यार्थी के सामने आज नहीं उठते, एक, क्या गाँधीजी के सिद्घान्तों के अनुसार इस आन्दोलन का आधार सत्य-अहिंसा था? दो, अगर सच ही यह आन्दोलन सफल हो गया होता, तो भारत की स्थिति आज क्या होती?

पहले सवाल का जवाब गाँधीवाद के महान् दार्शनिकों के ऊपर छोड़ दिया जाय, तो अच्छा, क्योंकि दर्शन एक दुरूह विषय है, इसकी व्याख्या भाँति-भाँति से की जाने की परम्परा हमारे यहाँ ऋषियों-मुनियों के युग से चली आ रही है। लेकिन दूसरे सवाल का उत्तर तो एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में हमारी आँखों के सामने ही चरितार्थ हो चुका है। उसे कौन नहीं देख सकता? मोटी-से-मोटी अक्लवाला भी उसे सरलता से समझ सकता है।

ज़रा उस समय के भारत की स्थिति की रूप-रेखा अपने सामने तो लाएँ, जब अंग्रेज सन् बयालीस में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के सफल हो जाने पर भारत को छोडक़र चले जाते। स्पष्ट है कि उस युद्घ-काल में वे अपने साथ अपनी सारी फौजें और अस्त्र-शस्त्र भी ले ही जाते। बस, भारत रह जाता और उसके निहत्थे लोग रह जाते और हमारा सत्याग्रह और अहिंसा रह जाती। फिर क्या होता? बर्मा हड़पने के बाद भारत पर जापानियों का हमला, जिनके कुछ बमों का स्वाद कलकत्ता को मिल चुका था। हमारा सत्याग्रह और अहिंसा कुछ लाख लोगों, या करोड़ों की भी, जानें लेकर देश को जापान के हाथ सौंप देती। और फिर क्या होता? ...गाँधीजी की यह धारणा थी कि युद्घ में मित्र-राष्ट्र विजय प्राप्त नहीं कर सकते। यदि ऐसा हुआ होता तो भारत पर आज जापान का साम्राज्य होता। लेकिन ऐसा हुआ नहीं, गाँधीजी की धारणा को इतिहास ने ग़लत सिद्घ कर दिया, और भारत का जापान के हाथ में जाना धुरी-शक्तियों को इतनी शक्ति तो दे नहीं देता कि रूस की लाल सेना और अमरीका के एटम बमों को परास्त करने में वे सफल हो जाते। हुआ वही जो आज हमारी आँखों के सामने है, अर्थात् मित्र राष्ट्रों की विजय। फिर क्या जर्मनी, जापान आदि की तरह जापान-द्वारा विजित भारत का मित्र राष्ट्र के बीच बँटवारा नहीं होता? अर्थात् आज भारत पर फिर अमरीका या बर्तानिया या रूस का अधिकार होता या तीनों का भारत के किये गये टुकड़ों पर। ...और भारत को अपनी आज़ादी के लिए फिर नये तौर पर संघर्ष आरम्भ करना होता। ...

और तो और सुभाषचन्द्र बोस भी नेताजी हो गये! 'हिन्द फौज' लेकर वे भारत से अंग्रेजों को खदेड़ने के लिए चले थे! अगर वे सच ही अंग्रेजों को खदेड़ देते, तो क्या होता? अगर जापान उन पर करम कर भी देता (मान लीजिए), तो भी क्या नेताजी का भारत मित्र-राष्ट्रों के विरुद्घ धुरी-राष्ट्रों में शामिल न होता? ऐसा होने के सिवा और चारा क्या था? और होता, तो फिर क्या वही परिणाम नहीं होता, जो ऊपर कहा गया है?

लेकिन नहीं, गाँधीजी, नेहरूजी और नेताजी को कुछ मत कहिए! बस कम्युनिस्टों को पानी पी-पीकर गाली दीजिए, उन्होंने रूस की सहायता के निमित्त मित्र-राष्ट्रों के फ़ाशिस्तों के विरुद्घ युद्घ को 'लोकयुद्घ' का नाम दिया, उनको सहायता पहुँचाने के प्रयत्न किये, क्योंकि वे जानते थे कि रूस गया, तो सारी दुनिया की आज़ादी गयी, जनवाद का नाम मिटा, जनता की ख़ुशहाली गयी, समाजवाद, मजदूरों और किसानों और ग़रीब जनता के राज का सपना गया...

क्या अजब बात है कि जिन्होंने ग़लती की, वे देश के सिरमौर बने हुए हैं, और जिन्होंने सही नीति बरती, उन्हें ग़द्दार कहा जाता है? ...क्या किसी आवेश के कारण क्षुब्ध होकर जनता पागलपन पर अमादा हो जाय, तो जन-नेता का यह कत्र्तव्य है कि वह उसके पागलपन को हवा दे, उसके पागलपन का नेतृत्व करे और उसके किये गये पागलपन के कार्यों की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ओढ़ ले? या यह कि उस स्थिति में, जनता का कोप-भाजन होने के ख़तरे को मोल लेकर भी, उसका, जन-नेता होने की हैसियत से, यह कत्र्तव्य है कि वह कहे कि जनता आवेश या ग़ुस्से में आकर जो कर रही है, वह ग़लत है, उसे ये काम नहीं करने चाहिए? स्पष्ट है कि सच्चा जन-नेता जनता के ग़लत आवेशों के पीछे नहीं चलता, वह उनका दमन करता है, उन्हें संयमित करता है और जनता को समझाता है, उनकी आँख खोलता है। ऐसा करने में कभी-कभी भले ही वह उन्मादी जनता का कोप-भाजन हो जाता है, किन्तु इसके भय से वह अपने कत्र्तव्य से कभी च्युत नहीं होता।

बयालीस में कम्युनिस्ट पार्टी ने जनता की पार्टी होने की हैसियत से, सही माने में अपने नेतृत्व का यही कत्र्तव्य निभाया था और वह उसका परिणाम भुगत रही है। लेकिन एक दिन आयगा, जब जनता इस तथ्य को समझेगी और कांग्रेसियों के बदनाम करने के बावजूद वह कम्युनिस्ट पार्टी की उस समय की सही नीति की प्रशंसा करेगी!

युद्घ में फ़ाशिस्ती ताक़तों के ख़ात्मे और सोवियत रूस की विजय का संसार व्यापी प्रभाव अवश्य पड़ेगा। फ्रांस और बरतानिया-जैसे साम्राज्यवादी देशों की कमर टूटे बिना अब न रहेगी, इनकी ताक़तों की कलई लड़ाई ने खोलकर रख दी है। अपने उपनिवेशों को बनाये रखना इनके लिए अब असम्भव हो जायगा। उपनिवेशों के स्वतन्त्रता-संग्राम अब और ज़ोर पकड़ेंगे और वह दिन दूर नहीं जब एक-एक कर सभी उपनिवेश स्वतन्त्र हो जाएँगे। ...

मुन्नी कदाचित् कम्युनिस्ट पार्टी की सही नीति को समझकर ही उसमें शामिल हुआ है, वर्ना वह जेल तो एक कांग्रेसी की हैसियत से गया था। जाने कितने राजनीतिक क़ैदी मुन्नी की तरह कम्युनिस्ट होकर जेल से निकले होंगे! ...हमारे देश में भी कम्युनिज़्म आ जाय, तो कितना अच्छा हो! व्यक्तिगत रूप से अपने-अपने जीवन-संघर्ष में लगे रहने के कारण देश का कितना समय, कितनी शक्ति बरबाद हो जाती है! सामूहिक रूप से सभी लोग मिलकर जीवन के लिए संघर्ष करें, तो यह प्रक्रिया कितनी सरल हो जाय और कितनी जल्दी इन्सान इसमें सफलता प्राप्त कर ले। व्यक्तिगत स्वार्थ और व्यक्तिगत सुरक्षा की चिन्ता में ही आज इन्सान मर-खप जाता है। यदि राष्ट्र हर व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले ले और हर व्यक्ति को उसकी योग्यता और शक्ति के अनुसार विकसित होने का सुअवसर प्रदान करे और काम दे तो इससे बढ़कर क्या हो सकता है! ...उत्पादन के सभी साधनों पर राष्ट्र अपना अधिकार प्राप्त करके, पूँजीपतियों-द्वारा मज़दूरों तथा उपभोक्ताओं का शोषण समाप्त कर दे, तो ग़रीबी-अमीरी का सवाल क्यों पैदा हो और समाज में व्यक्ति की मान-मर्यादा का माप पैसा ही क्यों हो? फिर पैसे के चक्कर में पडक़र इन्सान अपनी ज़िन्दगी क्यों बरबाद करें? पैसे का तब मूल्य ही क्या रह जायगा, आवश्यकता ही क्या रह जायगी? सब बुराइयों की जड़ तो यही है? ...मन्ने ने कब सोचा था कि कभी वह रिश्वत लेकर किसानों का गला रेतेगा...कभी रोज़गार करेगा और राशनिंग इन्स्पेक्टर को घूस देकर सूत का कोटा लेगा और मज़दूरों का शोषण कर, अवसर से लाभ उठाकर रुपया जमा करेगा? लेकिन वह क्या करे?

मुन्नी सोचता होगा कि मन्ने यह सब-कुछ नहीं समझता, उसके जीवन का उद्देश्य किसी-न-किसी प्रकार बस रुपया कमाना है। ...कैसे कह गया, तुम आदमी हो, या आदमी की पूँछ? ठीक उसी तरह जैसे एक दिन महशर ने उससे पूछा था कि तुम इन्सान हो कि सूअर? ...मन्ने क्या सचमुच सूअर हो गया है, आदमी की पूँछ रह गया है? ...वह इन्सान नहीं, उसमें इन्सानियत नहीं, ग़ैरत नहीं, सच्चाई नहीं? ...वह घूस

लेता है...वह अपनी बीवी को धोखा देता है...वह रोज़गार करके ग़रीब कारीगरों का खून चूसता है...वह सिर्फ़ रुपये का बन्दा है...और मन्ने का सिर आप ही शर्म से झुक गया।

बड़ा भांजा ट्रे में नाश्ता और चाय लिये आकर बोला-मामू?

-वे तो चले गये!-मन्ने चौंककर बोला-अब क्या होगा, ले जाओ।

-ममानी ने आपको बुलाया है।

-चलो,-कहकर मन्ने उठ खड़ा हुआ।

कानपुर से एक नया साप्ताहिक निकलनेवाला था। उसके लिए एक सम्पादक की आवश्यकता का विज्ञापन अख़बार में निकला था। मुन्नी ने मन्ने को बिना बताये आवेदन-पत्र भेजा दिया था। वहाँ से उसका नियुक्ति-पत्र आ गया, तो उसने मन्ने को बताया और कहा-मैं परसों चला जाऊँगा।

मन्ने बोला-क्या तनख़ाह है?

-वेतन सत्तर रुपये और नौ महँगाई।

-इतने से कैसे काम चलेगा? अब तो तुम्हारे घर की ज़िम्मेदारी भी तुम्हारे ही ऊपर है। राधे बाबू तो फूँकना जानते हैं, कमाना नहीं।

-चलेगा, जैसे चले।

मुन्नी को उम्मीद थी कि मन्ने शायद प्रकाशन के काम के बारे में कुछ कहे। लेकिन वह बोला-तो परसों ही चले जाओगे?

-हाँ। यों एक हफ्ते का समय दिया है उन्होंने, लेकिन क्या फ़ायदा वक़्त ख़राब करने से।

-तो कल रात को हमारे साथ खाना खाओ।

-खा लेंगे।

-तुम चले जाओगे, तो मेरे लिए यहाँ बड़ी उदासी हो जाएगी। वक़्त कटना मुश्किल हो जायगा।

-तुम्हें काम से कहाँ फुरसत है? मैं ही तो बिलल्ला था, जो दिन-रात तुम्हारे पास बैठा रहता था।

तुम्हारे पास बैठना और तुमसे बात करना ही मेरे लिए टानिक का काम करता था। ...कानपुर तो बड़ा कारोबारी शहर है, देखना, वहाँ मेरे लिए भी कोई काम...

मुन्नी ज़ोर से हँस पड़ा। बोला :

फिर मुझे ले चला वहीं ज़ौक़े-नज़र को क्या करें?

झेंपकर मन्ने बोला-नहीं, यार, वह बात नहीं। मैं चाहता था कि तुम्हारे साथ रहूँ, शायद तुम्हारी वजह से मैं भी किसी काम का आदमी बन जाऊँ...

-अब बनाने भी लगे?

-बख़ुदा, सच कह रहा हूँ। तुम साथ रहते तो...

-फिर वही बेकार की बात।

-तो क्या सच ही तुमने समझ लिया कि मैं बिलकुल बेकार का आदमी हूँ?

-नहीं, ऐसी बात नहीं है,-ज़रा रुककर मुन्नी बोला-मुझे तुमसे बड़ी-बड़ी उम्मीदें हैं। सवाल सिर्फ़ तुम्हारे इरादे का है।

-मेरे इरादे तो... ख़ैर, छोड़ो तुम। मैंने ही रास्ता बिगाड़ा है, मैं ही इसे सुधारूँगा!

-वह तो मैं जानता हूँ! ...

रात को खण्ड का बाहर का दरवाज़ा बन्द करके दोनों आँगन में तख़्त पर बैठे खाना खा रहे थे कि दरवाज़े की कुण्डी खडख़ड़ा उठी।

ज़रा पेरशान होकर मन्ने बोला-जाने, कमबख़्त कौन इसी वक़्त आ मरा!

-तो इसमें परेशान होने की कौन-सी बात है?-मुन्नी बोला-जाक र देखो।

-परेशान मैं तुम्हारे लिए होता हूँ।

-हुँ!-ज़रा हँसकर मुन्नी बोला-मेर लिए पेरशान होने की कोई बात नहीं :

अब तो बात फैल गयी जाने सब कोई!

यार, जब बचपन में नहीं डरे तो अब क्या डरेंगे? जाओ, देखो।

कुण्डी खडख़ड़ाती जा रही थी। लालटेन ज़रा धीमी करके मन्ने ने जाकर, कुण्डी खोल, एक पल्ला थोड़ा-सा खोलते हुए बोला-कौन है?

पल्ला अन्दर को ढकेलकर, घुसती हुई महशर बोली-खोलो भी, मैं हूँ और कौन है?

मन्ने ने परेशान होकर एक बार उसकी ओर देखा, लेकिन महशर बिना उसकी ओर देखे दनदनाती हुई अन्दर आँगन में चली आयी।

मुन्नी को अचानक अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ, जैसे अचानक अँधेरे में छम-से किसी के सामने एक परी आकाश से उतर आये!

-आदाब!-ज़रा-सा हाथ उठाकर, मुस्कराती हुई, खनकती आवाज़ में महशर ने कहा।

-आप अचानक कैसे आ गयीं?-आश्चर्य का झटका सम्हालते हुए मुन्नी बोला।

लालटेन की बत्ती उकसाती हुई महशर बोली-क्यों? मुझसे मिले बिना ही चले जाने का इरादा था क्या?

दरवाज़ा बन्दकर, कमरे से एक कुर्सी लिये, आँगन में आकर मन्ने बोला-लालटेन तेज़ क्यों की जा रही है? चेहरा दिखाई नहीं दे रहा है क्या?

-तुम्हारी तरह अँधेरे में हमें थोड़े सूझता है!-खिल-से हँसकर महशर बोली।

झेंपकर मन्ने बोला-वो तो आप लोग मर्दों को बना ही देती हैं! आइए, इस कुर्सी पर तशरीफ़ रखिए!

बैठकर मुँह मटकाती हुई महशर बोली-कोई किसी के बनाने से थोड़े ही बनता है। जिसको जो बनाना होता है, ख़ुदा अपने हाथों से ही बनाकर भेजता है!

मन्ने कुछ कहने को सम्हल ही रहा था कि मुन्नी बोला-भई, यह नोक-झोंक अब रहने दो!-फिर महशर से कहा-आइए, नोश फ़रमाइए!

-मैं इनके साथ नहीं खाती!-मुँह बिचकाकर महशर बोली।

मन्ने ने मुँह गाडक़र खाना शुरू कर दिया।

-आप मेरे साथ खाइए!-मुन्नी बोला।

-आप तकल्लुफ़ न कीजिए, वर्ना ये हज़रत सब चट कर जाएँगे!-खिल-से हँसकर महशर बोली।

-अब ये क्या खाते हैं,-मुन्नी बोला-इनका खाना कभी था! ख़ैर, आप आइए, वर्ना मैं भी...

-यह क्या?-तेवर ज़रा बदलकर महशर बोली-आप खाइए न!

-नहीं, यह नहीं हो सकता!

-भई, कहो तो मैं उठ जाऊँ?-मुँह में बड़ा-सा कौर लिये हुए मन्ने बोला।

-आप?-उठकर तख़्त पर बैठती महशर बोली-इतने तमीज़दार आप कब से हो गये?

ख़ुशबू और पास आ गयी। महशर ख़ूब सज-सँवरकर, इत्र में बसकर आयी थी। एक नज़र में कोई तमीज़ न कर सकता था कि वह तीन बच्चों की माँ है।

बड़ी नज़ाकत और एक प्यारी अदा के साथ रोटी का लुक्मा तोड़ती हुई महशर बोली-तो कल ही रवानगी है?

-हाँ।

-इतनी जल्दी आप चले जाएँगे, ऐसी उम्मीद न थी।

-मुझे भी अफ़सोस है, लेकिन क्या किया जाय, मजबूरी है।

-उस रात की पोखरे पर की मुलाक़ात हमेशा याद रहेगी!

-मुझे भी!

-और मुझे भी!-मन्ने दाल-भात में मूसलचन्द की तरह बोल उठा।

दोनों ने उसकी ओर घूरकर देखा।

-क्यों?-तुनककर महशर बोली-तुम्हें क्यों याद रहेगी?

-उस रात चौकीदारी करने का मुझे जो मज़ा मिला, वह क्या भुलाने की चीज़ है? और फिर जो दूसरे दिन घर में बमचख़ मचा...-मन्ने ने अचानक दाँतों से ज़बान दबा ली।

-वह क्या?-उत्सुक होकर मुन्नी बोला।

मन्ने ज़रा देर ख़ामोश रहकर महशर की ओर देखकर बोला-इनकी जवाँमर्दी का नतीजा, और क्या? ...वह तो मुझे मालूम ही था कि ऐसा होगा!

-क्या हुआ, यह तो बताओ!-व्याकुल होकर मुन्नी बोला-तुमने तो मुझे कुछ बताया नहीं।

-तुम्हें क्या बताते? ...औरतों के पेट में कोई भी बात कंकड़ की तरह गड़ती रहती है। इन्होंने जुब्ली मियाँ की बीवी से कह दिया कि रात पोखरे पर टहलने गये थे, वहाँ मुन्नी साहब से मुलाक़ात हो गयी। फिर क्या था, कुहराम मच गया। जुब्ली मियाँ ने ऐलान कर दिया कि सब औरतें मन्ने से पर्दा करें और महशर का बायकाट! ...फिर यह बन्दी क्यों पीछे रह जाती, बोली, अभी तो पोखरे पर मिले हैं, कल घर के अन्दर बुलवाऊँगी, देखें हमारा कोई क्या बिगाड़ लेता है! ...तबसे जुब्ली मियाँ बिफरे हुए हैं। सारी बिरादरी में औरतों और मर्दों के लिए बातचीत का अच्छा चटपटा मसाला मिल गया है! ...और अब कल फिर एक रद्दा रखा जायगा, जब लोगों को मालूम होगा कि यह खण्ड में...

मुन्नी का हाथ रुक गया था, सिर नीचे झुक गया था।

-अरे, आपने हाथ क्यों रोक लिया?-मीठे, स्नेह-सिक्त स्वर में महशर बोली-आप भी किन बातों की फ़िक्र में पड़ गये! हाथ चलाइए!-फिर मन्ने की ओर देखकर ज़रा तेज आवाज़ में बोली-कल कुछ हुआ, तो बखिया उधेडक़र रख दूँगी! ...तुम मर्दों को कुछ मालूम न हो, लेकिन हमसे घर की कोई बात छुपी नहीं रहती। एक-एक की वह ख़बर लूँगी कि लोग समझेंगे! क्या फ़ायदा वह-सब इस वक़्त कहने से। जुब्ली मियाँ का लडक़ा...

-छोड़िए वह-सब,-मुन्नी गिरे हुए स्वर में बोला-मुझे अफ़सोस है कि मेरी वजह से...

-आपकी वजह से कैसे?-महशर उसकी बात काटकर बोली-उसकी पूरी ज़िम्मेदारी तो मेरे ऊपर है! आप ख़ामख़ाह के लिए अपने को परेशान न करें!

-और क्या?-मन्ने हँसकर बोला-परेशानी झेलने के लिए मैं तो हूँ ही, तुम तो बस इनकी बहादुरी की दाद दो! हमारे गाँव की तारीख़ में इन्होंने एक नया सफ़हा जोड़ा है!

-बड़े मूड में हो तुम आज!-मुन्नी उसकी ओर कनखियों से देखकर बोला।

-मेरा मूड तो इनकी ख़ुशी पर मुनहसर करता है!

-रहने दो!-महशर उसके मुँह की ओर हाथ हिलाकर बोली।

-बख़ुदा!-मन्ने गम्भीर होकर बोला-तुम्हें आज ख़ुश देखकर मैं कितना ख़ुश हूँ, इसका अन्दाज़ा तुम नहीं लगा सकती!

-अगर ऐसी बात है,-मुस्कराकर महशर बोली-तो आज भी पोखरे पर चलें?

-बख़ुशी!-मन्ने बोला-ज़रूर चलिए! तुलसी का चौरा आप लोगों का इन्तज़ार कर रहा होगा!

-चलिएगा न?-महशर ने मुन्नी से पूछा।

जिस लहजे में महशर ने यह बात पूछी थी, उसे समझकर मुन्नी चट जवाब न दे सका। जाने को उसका मन न था। क्या फ़ायदा? कल फिर एक कुहराम मचेगा। हो सकता है, बात बहुत बढ़ जाय और ख़ामख़ाह के लिए महशर को लोग बदनाम कर दें। ...लेकिन महशर की बात को अस्वीकार करना मुश्किल था। ...औरत होकर, सब-कुछ जानकर भी यह क्यों एक बला सिर पर उठाने को तैयार है? इस सतायी हुई को उसमें क्या मिल गया है कि इस तरह उससे मिलने और बात करने को आतुर रहती है? ...उस रात उससे मिलकर वह कितनी ख़ुश थी! कितने घण्टे वे तुलसी के चौरे की आड़ में बैठकर बातें करते रहे थे! ...कितनी तरह की बातें...मन्ने की खाँची-भर शिकायतें...आयशा की कहानी...मन्ने के ज़ुल्मों की बातें...और सबके ऊपर यह कि आप कितने अच्छे हैं! ...पहली ही मुलाक़ात में लगता है कि मुझे आपसे मुहब्बत हो गयी है! ...फिर अपने ही हाथों से उसके मुँह में पान खिलाना। ...फिर...फिर मिलिएगा न? ...

इतनी जल्दी कोई लडक़ी किसी मर्द के इतने पास आ जाती है, उससे इस तरह घुल-मिल जाती है, मुन्नी को मालूम नहीं था। सच पूछा जाय, तो मुन्नी को इस दुनियाँ का कोई तजुर्बा ही नहीं था। लड़कियों को वह बड़े सम्मान और पवित्रता की दृष्टि से देखता था और शायद इसी कारण वह उन्हें दूर से ही देखता था, उनके पास

जाने से उसे डर लगता था। ...महशर उसके जीवन में पहली औरत थी, जिसके इतने समीप वह घण्टों बैठा था और उससे खुलकर बातें की थीं। ...उसे ताज्जुब हुआ था, जब उनसे दूर घाट की सीढ़ी पर बैठे मन्ने ने कहा था, तीन बज गये, अब उठो! वह समझ ही न पा रहा था कि इतना समय इतनी जल्दी कैसे बीत गया था! ...मुन्नी को कोई डर न लगा था, शायद इसलिए कि महशर मन्ने की बीवी थी और मन्ने को उस पर पूरा विश्वास था। फिर भी उसने यह कहाँ सोचा था कि इस तरह अकेले में बैठकर महशर उससे बातें करेगी? उसने तो सोचा था कि वे तीनों एक साथ बैठकर बातें करेंगे। वह तो महशर ने ही मन्ने से कह दिया कि वह उन्हें अकेले छोड़ दे और मन्ने ने सच ही घाट पर पहुँचते ही कह दिया था, मैं घाट पर बैठकर चौकीदारी करूँगा, तुम लोग उधर जाकर बातें करो। और वे जाकर तुलसी के चौरे की आड़ में चबूतरे पर बैठ गये थे। बीच-बीच में मन्ने सिगरेट लेने मुन्नी के पास आ जाता था, बस। उस रात मन्ने ने कितने सिगरेट पिये थे!

मुन्नी को चुप देखकर मन्ने ही बोला-इनसे आप क्या पूछती हैं? इनके दिल में भी लड्डू फूट रहे हैं!-और वह हँस पड़ा था। ...

वे खाना खाकर बाहर निकले, तो रात गदरा गयी थी। आसमान से तारे सन्नाटे की वर्षा कर रहे थे। सप्तमी का चाँद वियोगी की आँख की तरह शून्य में ताकते-ताकते जैसे थक गया था।

वे आकर तुलसी के चबूतरे पर बैठे ही थे कि महशर ने उसका हाथ पकडक़र अपने होंठों से लगा लिया। फिर अपना सिर उसकी छाती पर रखकर सिसकने लगी। मुन्नी का हाथ अनायास ही उसकी पीठ पर चला गया। वह सहलाता हुआ बोला-यह क्या, महशर? चुप रहो, बातें करो!

जैसे युगों की तड़पती नारी ने पुरुष को पा लिया हो और उसके सीने पर अपना सिर रख दिया हो और अपने को समर्पित कर दिया हो और खुशी के मारे सिसक उठी हो! ...ओह, मन्ने ने इसे कितना दुख दिया है!

उसका सिर उठाकर मुन्नी ने अँगुलियों से उसके आँसू पोंछ दिये।

महशर बोली-अभी तुम मत जाओ!

-नहीं जाऊँगा, लेकिन इस तरह परेशान मत होओ!

महशर ने अपनी अँगुली से अँगूठी निकाली और मुन्नी कुछ समझे कि उसने उसका हाथ पकडक़र उसकी अँगुली में अँगूठी पहना दी।

-यह क्या, महशर?-परेशान होकर, अँगूठी निकालता हुआ मुन्नी बोला-यह तुमने क्या किया?

-नहीं-नहीं, इसे निकालो मत!-उसकी अँगुलियों को मुठ्ठी में दबाती हुई महशर बोली-यह हमारी इस मुलाक़ात की यादगार रहेगी! तुम इसे हमेशा पहने रहना, इसे देखकर तुम्हें मेरी याद आएगी!

-इसकी क्या ज़रूरत है? मुझे तुम योंही याद रहोगी! तुम्हारी अँगुली सूनी हो जायगी।-मुन्नी ने उसकी मुठ्ठी में अपनी अँगुलियाँ हिलाते हुए कहा-एक ही तो अँगूठी तुम्हारे पास मालूम होती है!

-सूनी तो मेरी सारी देह ही है! इतना रुपये कमाया कमबख़्त ने, लेकिन यह भी तौफ़ीक़ न हुई कि दो जोड़े ज़ेवर ही मेरी देह के लिए बनवा देता!

-इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि यह अँगूठी...

-नहीं, तुम्हें मेरी क़सम है, इसे अब अपनी अँगुली में से न निकालना! यह मेरी पहली भेंट है!

-अब तुम्हें मैं क्या बताऊँ, मेरी अँगुली में तुम्हारी यह अँगूठी ज़ेब नहीं देगी! ... ख़ैर, अब तुम बताओ, तुम्हें मैं कानपुर से क्या भेजूँ?

-कुछ नहीं। मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं!

-यह कैसे हो सकता है? अब तो तुम्हें कुछ-न-कुछ माँगना ही पड़ेगा!

-फिर कभी माँग लूँगी, क्या जल्दी है। आप कब जाएँगे?

-अब तुम ही कहो, आप कहने की क्या ज़रूरत है?

हाथ छोडक़र, मुँह में आँचल दबाकर महशर बोली-माफ़ करो! बताओ, कब जाओगे?

-जल्दी ही जाना चाहिए, लेकिन तुम कहती हो तो, दो-एक दिन और रुक जाऊँगा।

-बस?

-इससे ज़्यादा रुकने के लिए मत कहना, वर्ना...

-नहीं-नहीं, ऐसी बात है तो क्यों कहूँगी? लेकिन मैं तो चाहती थी...

तभी घाट से मन्ने की आवाज़ आयी-एक सिगरेट देना।

-आ जाओ, आ जाओ!-मुन्नी जेब से सिगरेट की डिब्बी और माचिस निकालते हुए बोला।

मन्ने ने आकर, जम्हुआई लेते हुए कहा-मुझे बड़ी नींद आ रही है। बहुत ज़्यादा खा लिया।

-तो घाट पर सो जाओ न,-खिल-से हँसकर महशर बोली-जाने लगेंगे तो जगा लेंगे।

-नहीं-नहीं,-ऐसा मत कहिए,-मन्ने के हाथ में सिगरेट देते हुए मुन्नी बोला-अब हमें चलना ही चाहिए, बहुत रात बीत गयी है।

-मैं तो अभी नहीं जाती! ...फिर जाने कब आप से मुलाक़ात हो!

-अरे, अब तो मुलाक़ात होती ही रहेगी,-मन्ने सिगरेट जलाते हुए बोला-कानपुर कौन दूर है। चलो इस वक़्त।

-हाँ, अब चलना ही चाहिए,-कहकर मुन्नी उठने लगा, तो महशर ने उसका हाथ पकडक़र बैठाते हुए कहा-बैठिए भी, अभी तो कोई बात ही नहीं हुई!

-अच्छा, थोड़ी देर और सही,-मुँह से धुआँ छोड़ता हुआ मन्ने बोला और वहाँ से खिसक गया। ...

फिर बड़ी देर तक बातें होती रहीं। महशर बोलती रही और मुन्नी सुनता रहा। महशर के पास कितनी बातें थीं, इसका अन्दाज़ा लगाना मुश्किल था। सतायी हुई, दुखी महशर को यह पहला हमदर्द मिला था, जिसे वह सब-कुछ सुना देना चाहती थी, शुरू से अन्त तक। मुन्नी अभिभूत होकर सब-कुछ सुनता रहा और गुनता रहा।

-इतने ज़ुल्मों के बाद भी दिल नहीं मानता, मैं इससे मुहब्बत किये बिना रह ही नहीं सकती!

-किये जाओ, एक दिन तुम्हें इसका फल ज़रूर मिलेगा!

-उसकी मुझे उम्मीद नहीं। लेकिन अब तुम्हें पाकर मालूम होता है कि मेरी आधी तकलीफ़ दूर हो गयी। तुमसे मेरी तमन्नाएँ पूरी होंगी। तुम भी तो कहीं इन्हीं की तरह...

-दिल से वे आदमी अच्छे हैं, महशर! क्या बताएँ...देखो...

-रहने दो, अब देखना कुछ नहीं रह गया है!

घाट से फिर मन्ने की अवाज़ आयी-अब तो चलो, भाई!

और वे उठ गये।

दो दिनों में चार लम्बे-लम्बे ख़त महशर और मुन्नी के बीच आये-गये।

मुन्नी चला गया।

मन्ने ने इतने वर्षों के बाद महशर के चेहरे पर एक रौनक़ देखी। वह जब भी उसके सामने पड़ती, वह घूर-घूरकर उसका मुँह देखने लगता।

एक बार महशर ने पूछा-इस तरह घूर-घूरकर क्या देखते हो?

-मुहब्बत का रंग!-मुस्की छोड़ता हुआ मन्ने बोला।

और महशर का चेहरा लाल हो गया! बोली-तुम्हें कोई उज्र है?

-हर्गिज़ नहीं! मैं तुम्हारी तरह नहीं हूँ!

-देखूँगी!

-देख लेना!

मन्ने को उसमें तब्दीली देखकर बड़ी ख़ुशी हुई। लेकिन साथ ही उसे लग रहा था कि कहीं एक बारीक काँटा चुभ रहा है। इससे कोई तकलीफ़ नहीं थी, फिर भी एक ख़लिश तो थी ही।

दिन बीतते गये। जाड़े में केन-इन्स्पेक्टरी और गर्मी में ग़ल्ले का ब्यौपार।

एक महाजन के साथ उसने साझा कर लिया था। वही देहात में घूमकर ख़रीद करता था। रुपया मन्ने लगाता था। खेती का सिलसिला तो लगा ही हुआ था। एक तरह से मज़े में ही कट रहा था। घर में भी निस्बतन सकून ही रहा। मुन्नी आता जाता रहा।

फिर आज़ादी क्या आयी, एक ज़लज़ला आ गया!

ख़ूनी ख़बरों ने हवा ख़राब कर दी। लीगियों के चेहरों पर तो बदहवासियाँ छा गयीं, राष्ट्रीय मुसलमानों की भी हालत कुछ ठीक नहीं थी। ज़िले के कई इलाकों से भी मुसलमानों के मार-काट की ख़बरें आने लगीं। मन्ने के खण्ड में मुसलमानों की भीड़ लगी रहती, क्या किया जाय, यहाँ के भी हिन्दुओं के तेवर देखे नहीं जाते, जाने कब क्या हो जाय!

राधे बाबू की तो जैसे तूती ही बोल रही थी। उनका रोब देखने ही लायक़ था, जैसे हर मिनट वे इस इन्तज़ार में हों कि कोई लीगी कुछ बोले और वे हल्ला बुलवा दें। हिन्दुओं का जमघट उनके दरवाज़े पर लगा रहता। बयालीस के आन्दोलन में लीगियों ने जो लूट-पाट मचायी थी, उसका बदला लेने का मन्सूबा गाँठा जा रहा था।

जुब्ली और नूर का वही हाल था, जो दाँत और नाख़ून तोड़ देने पर भेड़िए का हो जाय। वे राधे बाबू के इर्द-गिर्द कुत्तों की तरह चक्कर काटते रहते थे, जैसे वही उनके आक़ा हों।

दहशत के पहले ही धक्के में कई मुसलमानों ने मन्ने के मना करने के बादवजूद औने-पौने में अपने घर हिन्दू पड़ोसियों के हाथ बेंच दिये और रातो-रात भाग निकले।

मुसलमानों के घर में मुहर्रम छाया था। रात में सभी मुसलमानों की औरतें मन्ने के घर इकट्ठा होकर रतजगा करतीं और मर्द बाबू साहब और उनके कई लठबन्दों के साथ खण्ड में। ...मन्ने उन्हें समझाता, घबराने की कोई बात नहीं। थोड़े दिनों में सब ठीक हो जायगा। लेकिन बाहर की ख़बरें पढक़र और पास-पड़ोस के गाँवों की खबरें सुनकर अन्दर-ही-अन्दर उसकी हालत भी ख़राब हो रही थी। ...इधर दिल्ली से जो ख़बरें आ रही थीं, उनसे यह बात तै होती जा रही थी कि कांग्रेस पाकिस्तान स्वीकार कर लेगी। फिर भी गाँधीजी और मौलाना के रहते ऐसा हो सकेगा, इस पर किसी भी राष्ट्रीय मुसलमान या देशभक्त कांग्रेसी का विश्वास न टिकता था। लेकिन गाँव के लीगी उछल-कूद मचा रहे थे और राधे बाबू और मन्ने को बार-बार छेड़ रहे थे-कहिए, जनाब? कहाँ रहा आपका अखण्ड भारत? मार लिया दंगल? पाकिस्तान ज़िन्दाबाद? जुब्ली और नूर के तो जैसे पाँव ही ज़मीन पर न पड़ रहे थे। उनकी ख़ुशी आँखों से

छलकी पड़ती थी। ...और सच ही, देखते-देखते ही पाकिस्तान एक तथ्य बन गया। गाँधीजी का विरोध का जो बयान आया, उसमें जैसे कोई शक्ति न थी, यह पता लगते देर न लगी। काश, उनकी एक टुकड़ी भूमि भी देश से अलग न होने देने की प्रतिज्ञा दुर्योधन-प्रतिज्ञा सिद्घ होती? महाभारत भी मच जाता, तो अच्छा ही था। आज जो हो रहा था, उसमें क्या महाभारत से कम प्राणों का होम हो रहा था? लेकिन नहीं, गाँधीजी में कदाचित् इस समय दुर्योधन की भी दृढ़ता न रह गयी थी। नेहरू, पटेल और राजेन्द्र बाबू से भिड़ने की शक्ति उनमें न थी। देश के सबसे महान् नेता, राष्ट्रपिता तथा सत्य और अहिंसा के अवतार गाँधीजी अचानक, अपने शिष्यों के समक्ष ही, इतने नि:शक्त, विवश और निष्क्रिय हो जाएँगे, यह कौन जानता था! उनका हृदय भले रोता हो, किन्तु वे कुछ कर न पाएँगे, यह स्पष्ट हो गया। ...फिर यह कौन जानता था कि विभाजन के तुरन्त बाद ही यह ख़ून-खच्चर शुरू हो जाएगा? इतने बड़े-बड़े नेता, गाँधीजी और नेहरू के भी ख़ाबो-ख़याल में यह बात कहाँ आयी थी? ...जिन्ना ने भी यह कहाँ सोचा होगा? आकर वे देखते अपने लीगी मुसलमानों को यहाँ, जिन्होंने उन्हें पाकिस्तान दिलाया था। ...गाँव के वे सारे गुमराह मुसलमान आज जुब्ली और नूर को गालियाँ दे रहे थे, जो उस वक़्त तो पाकिस्तान के नारे लगाते थे और आज उन्हें छोडक़र राधे बाबू के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रहे थे। काश, उन्हें मालूम होता कि पाकिस्तान बनने के बाद यह-सब होगा, तो...वे मन्ने की चिरौरी करते थे कि किसी तरह वह राधे बाबू से मिले और उनसे आश्वासन ले। ...लेकिन मन्ने की आत्मा इसे स्वीकार न करती। आज उसे अफ़सोस हो रहा था कि उसने क्यों न राजनीति में खुलकर हिस्सा लिया? ...इस समय वह अपने को राष्ट्रवादी कहे, तो कौन उस पर विश्वास करेगा? ...इस गाँव में तो योंही हिन्दू-मुसलमानों में पुश्तैनी बैर है। हिन्दुओं को इससे अच्छा अवसर और फिर कब मिलेगा? और मन्ने की परेशानी और चिन्ता की कोई सीमा न थी। उसे रह-रहकर ऐसा लगता था कि वह गाँव के सभी मुसलमानों के साथ हिन्दुओं के बीच घेर लिया गया और...

किसी दिन ख़बर आती कि फलाँ गाँव से हिन्दुओं का गिरोह मुसलमानों को मारता-काटता चला आ रहा है...किसी दिन ख़बर आती कि फलाँ गाँव से...और मुसलमान बेचारों की जान सूख जाती, या अल्लाह क्या होने वाला है?

ख़ुदा-ख़ुदा करके दिन कटते रहे। इक्के-दुक्के मुसलमान भागते रहे।

मन्ने को बस एक बात से ही साहस बँधा रहा कि यहाँ के महाजन, जो हिन्दुओं के नेता हैं, मार-काट नहीं जानते। ये मुक़द्दमा लड़ सकते हैं, लेकिन बलवा नहीं कर सकते। उसे सबसे बड़ा डर यह था कि कहीं दूसरे गाँव के हिन्दू न चढ़ आयें...

लेकिन गाँव का सौभाग्य कि वैसी कोई वारदात न हुई। इसके बावजूद गाँव में मुसलमानों का मोहल्ला सुनसान हो गया। बहुत-सारे मुसलमान पाकिस्तान चले गये। फिर धीरे-धीरे सब-कुछ शान्त हो गया।

इस साल मन्ने को केन-इन्स्पेक्टरी के लिए अर्ज़ी भेजने का होश ही न रहा। जो सालाना तीनेक हज़ार की उसकी आमदनी हो जाती थी, इस साल मारी गयी। दूसरी दुर्घटना यह हुई कि ताहिर हैज़े की चपेट में आ गया। ...

एक दिन बाबू साहब से उसने कहा-एक मेरा ज़रूरी काम है।

-कहिए।

-ज़रा होशियारी से करना होगा।

-कहिए।

-मैं खेत और ज़मींदारी बेचना चाहता हूँ, आप ग्राहक ठीक कर दें।

बाबू साहब ने अचकचाकर उसकी ओर देखा-क्यों? क्या आप भी...

मन्ने हँसकर बोला-नहीं। मेरी मिट्टी तो यहीं लगेगी! ...बात ज़रा राज़ की है, आप किसी से कहिएगा नहीं, वर्ना हल्ला मच जायगा, तो कोई ज़मीन-ज़मींदारी को साग के भाव भी नहीं पूछेगा!

बाबू साहब बेवकूफ़ की तरह उसका मुँह निहारने लगे।

-मुझे आसार साफ़ नज़र आ रहे हैं, अब ज़मींदारी जल्दी ही टूटनेवाली है।

-क्यों? आप ऐसा क्यों समझते हैं?-हैरान होकर बाबू साहब बोले।

-आपको मैं समझा न सकूँगा, लेकिन जो आने जा रहा है, उसे मैं अपनी आँखों के सामने देख रहा हूँ। देर करना ठीक नहीं, आप ग्राहक खोजिए!

-बहुत अच्छा।

-आपके नाम भी मैं कुछ लिखना चाहता हूँ-मन्ने के मुँह से यह निकला, तो अचानक ही उसके दिमाग़ में अपने मन की एक समय की वह बात कौंध उठी, जब उसने सोचा

था कि वह अपनी सारी जमीन-जायदाद बाबू साहब को दे देगा। उसका सिर आप ही झुक गया।

-इसकी क्या ज़रूरत है?-बाबू साहब ने योंही कहा।

-आपका भविष्य भी मेरी आँखों के सामने है। बाबू साहब, खेती-बारी में अब आप कुछ मन लगाइए, वर्ना दिन बहुत बुरे आ रहे हैं।

-वो तो आ भी गये हैं।

-क्या?

-घरवालों ने मुझे अलग करने की धमकी दे दी है।

-कोई चिन्ता नहीं। मैं हूँ न! अब आप ज़रा अपने को सम्हालिए। मैंने सोचा है, कि दस बीघे धनखर आपके नाम लिख दूँ। थोड़ी-बहुत और ज़मीन भी देखूँगा। आपके गुज़र के लिए कम न रहेगा। लेकिन एक बात का ध्यान रखें, ख़ुद खेती करें, लगान-बटाई पर न उठाएँ।

जुब्ली ने भी न जाने कहाँ से आगम को सूँघ लिया। उसने सभी मुसलमानों को इकठ्ठा किया और मिल-जुलकर एक फ़ारम खोलने की तजवीज़ पेश की। मन्ने को भी उसने बुलाया था। अब मन्ने के बिना उसका कोई भी काम न सँवरता था। मन्ने ने उसकी तजवीज़ की ताईद की और अपने भी बीस बीघे खेत फ़ारम को देने का वचन दिया। फ़ारम रजिस्टरी होकर खुल गया और जुब्ली ने फ़ारम के बहाने अपने और दूसरे मुसलमानों के खेत असामियों से निकालकर फ़ारम में मिला लिये। वह फ़ारम कमिटी का सेक्रेटरी हो गया।

अपनी खेती के लिए तीसेक बीघे खेत निकालकर मन्ने ने धीरे-धीरे बाक़ी खेत बेंच दिये। ...

मन्ने ने जैसा सोचा था, वही हुआ। ...ज़मींदारी टूटी, पंचायत क़ायम हुई। राधे बाबू ने जैसा चाहा, किया। वे सरपंच बन गये और ख़ुद ही, बिना चुनाव कराये, ग्राम पंचायतों के सदस्यों को नामज़द कर दिया। मन्ने ने कोई दिलचस्पी न दिखाई।

गाँधी-चबूतरे की स्थापना और पंचायत का उद्घाटन जिस दिन होने वाला था, उस दिन मुन्नी आ पहुँचा। उसे यह जानकर बड़ा अफ़सोस हुआ कि मन्ने पंचायत का

सदस्य नहीं था। अपने भाई पर उसे बड़ा ग़ुस्सा आया कि ऐसा एक सुलझा हुआ आदमी गाँव में है और उन्होंने उसकी ओर बिल्कुल ध्यान ही नहीं दिया।

लेकिन पूछा उसने मन्ने से-तुमने पंचायत में दिलचस्पी क्यों न ली? सुना है, बिना चुनाव के ही मनमाना...

हँसकर मन्ने बोला-मुझे यहाँ रहना है कि दिलचस्पी लूँ?

-जब तक यहाँ हो, तब तक तो तुम्हें दिलचस्पी लेनी चाहिए?-मुन्नी बोला-यह भी कोई पंचायत बनी है! तुम्हें चाहिए था कि जनवादी तरीक़े से चुनाव की माँग करते और लोगों को समझाते...

-क्या फ़ायदा? राधे बाबू ने स्वतन्त्रता-संग्राम में जो त्याग किया था, गाँव वाले उसी का उन्हें पुरस्कार दे रहे हैं। मैं क्यों ख़ामख़ाह के लिए उनके बीच में आऊँ? जैसे चल रहा है चलने दो।

-यह कैसी बातें कर रहे हो?-मुन्नी बिगडक़र बोला-पंचायत गाँव में गाँव की तरक्की के लिए बड़े-बड़े काम कर सकती है। तुम्हारे जैसे पढ़े-लिखे आदमी का उसमें होना जरूरी था!

-ऐसा तुम्हारा ख़याल है,-हँसकर मन्ने बोल-मेरा ख़याल तो इसके बिलकुल बरक्स है। मेरे देखने में तो गाँवों मे कांग्रेस को संगठित करने और उसकी शक्ति बढ़ाने की यह एक योजना है। इतने बेकार हुए कांग्रेस के ग्रामीण कार्यकर्ताओ को भी कोई काम चाहिए कि नहीं? कितने लोग मन्त्री और एम.एल.ए. और एम.पी. बन गये हैं, तो इन बेचारों को क्या सरपंची भी न मिले?

-ऐसा तुम समझते हो, तब तो और भी डटकर इसका विरोध करना चाहिए था!

-और कम्युनिस्ट के नाम से बदनाम होकर जेल चला जाना चाहिए था!

-ऐसा तुम क्यों कहते हो? पंचायत कानून...

-कानून तो हाथी के दिखानेवाले दाँत हैं! तुम्हें मालूम है, किशोर (पास का एक गाँव) में क्या होने जा रहा है?

-नहीं, क्या बात है?

-उस गाँव में कम्युनिस्टों का ज़ोर है। उन्होंने वहाँ के कांग्रेसी नेता, गुँजेसरी, की नामज़द पंचायत को पंचायत इन्सपेक्टर से कहकर रद्द करा दिया और पंचायत के चुनाव की माँग की! ...पंचायत सेक्रेटरी ने बाक़ायदा वहाँ चुनाव कराया, तो कम्युनिस्टों को बहुमत प्राप्त हो गया और उन्हीं का सरपंच भी चुन लिया गया। आज शाम को वहाँ भी गाँधी-चबूतरे और पंचायत का उद्घाटन होनेवाला है, चाहो तो वहाँ जाकर देखो कि क्या होता है। सुना गया है कि पुलिस ने उस गाँव को घेर लिया है और जैसे ही पंचायत जमा होगी, सरपंच और दूसरे कम्युनिस्ट सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया जायगा!

-ऐसा?-हैरानी और ग़ुस्से से मुन्नी बोला।

-बिलकुल!-मन्ने बोला-पंचायत सेक्रेटरी बाबू साहब के गाँव का एक कांग्रेसी कार्यकर्ता है। वही बता रहा था और कह रहा था कि हम किसी ग़ैरकांग्रेसी पंचायत को किसी भी हालत में नहीं चलने देंगे! मैंने कहा, तुम तो सरकारी आदमी हो, तुम्हें इन बातों से क्या मतलब? जो भी पंचायत चुनी जाय, वह कानून के मुताबिक़ काम करे, बस यही देखना तुम्हारा काम है। तो बोला, सरकार तो हमारी है पंचायत दूसरी पार्टी की कैसे हो सकती है? ...महा बग्गड़ आदमी है!

-सीपूजन है क्या, जो बयालीस में भागकर कलकत्ता चला गया था?

-हाँ-हाँ, वही सेक्रेटरी नियुक्त हुआ है इधर की पाँच पंचायतों का!

-वाह! जब रन पर चढ़ने का वक़्त आया था, तब तो बेटा भाग खड़े हुए थे, अब आये हैं मज़ा मारने! वह साला सेक्रेटरी बन गया!

-बड़ा चलतापुर्ज़ा हो गया है। यहाँ के उत्सव में भी शाम को आएगा। पूछना उससे।

-मैं तो किशोर जाऊँगा!

-वहाँ तुम जा ही नहीं सकते, पुलिस ने नाकेबन्दी कर रखी है।

-फिर भी जाऊँगा!

-भावुकता से काम लेने का यह वक़्त नहीं है। तुम चुपचाप यहाँ बैठे रहो। शाम तक सब मालूम हो जायगा। कम्युनिस्टों को वहाँ गिरफ्तार करना कोई आसान काम नहीं है। वे डटकर पुलिस से मोर्चा लेंगे।

-तुम्हें कैसे मालूम?

मुस्कराकर मन्ने बोला-मुझे सब मालूम है! ...मैं तुम्हारे पार्टी का हमदर्द हूँ।

-सच?-मुन्नी की आँखें हैरत और ख़ुशी से चमक उठीं। उसने तपाक से उसका हाथ पकड़ लिया।

मन्ने ने महसूस किया कि उस हाथ की गर्मी और ही थी। वह बोला-आज गाँधी जयन्ती है, गाँव-गाँव में गाँधी-चबूतरे की स्थापना होगी और किशोर-जैसे जाने कितने गाँवों में आज के ही दिन पुलिस कम्युनिस्टों के ख़ून से होली खेलेगी! राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, उनके सत्य और अहिंसा का ढोल पीटनेवाली कांग्रेस का असली रूप...

-हुः! नफ़रत से भरकर मुन्नी बोला-गाँधीजी को तो देश का विभाजन स्वीकार करने के दिन ही कांग्रेस के नेताओं ने दफ़ना दिया था! ...विभाजन की लगायी आग को बुझाने में और मुसलमानों को कटने से बचाने में गाँधीजी लगे थे, तो हिन्दू उन्हें गाली देते थे। इतने महान् नेता, जिन्होंने देश को नींद से जगाया, जनता को आन्दोलित कर स्वतन्त्रता के संग्राम के लिए कटिबद्घ किया, जो जनता में भगवान् और राम-कृष्ण की तरह पूजे गये, वही जनता के साम्प्रदायिक आवेश के क्षणों में इतने अलोकप्रिय हो जाएँगे, इसे कौन सोच सकता था! किन्तु कांग्रेस और हिन्दू जनता-द्वारा परित्यक्त होने की अवस्था में भी गाँधीजी ने अपना कत्र्तव्य नहीं भुलाया! गाली, बदनामी और सारी अलोकप्रियता को झेलकर भी वे अकेले अल्पसंख्यक मुसलमानों को बचाने के संकल्प पर डटे रहे। उस अवसर पर जनता की गुमराही, ग़ुस्से, नफ़रत, ख़ूँरेज़ी, आवेश और साम्प्रदायिकता के ऊपर उठकर गाँधीजी ने जिस महानता और सही नेतृत्व का परिचय दिया, कदाचित् वह उनके जीवन का चरमोत्कर्ष था, उस समय वे ईसा के समकक्ष पहुँच गये थे। ...दिल्ली में जब कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता राज-भार सम्हालने में व्यस्त थे, उसी शहर में गाँधीजी मुसलमानों की रक्षा की चिन्ता में लगे थे। एक नेहरू ने ज़रूर उनके इस काम में हाथ बटाया...हिन्दुओं के पागलपन से ग़ुस्सा होकर उन्होंने बिहार में जो बम गिराने की धमकी दी थी, उसका ख़ामियाज़ा, गाँधीजी ही की तरह, उन्हें भी कम न भुगतना पड़ा...और फिर गाँधीजी की शहादत... ख़बर सुनकर जो दिल-दिमाग को धक्का लगा, वह आज भी भूला नहीं है। ...और यह भय कि कहीं हत्यारा कोई मुसलमान न हो...ओह! शहर का क्या आलम था उस शाम? ...अगर रेडियो पर यह ख़बर न आयी होती कि वह हत्यारा एक हिन्दू था, तो जाने रात-भर में कितने मुसलमान मौत के घाट उतार दिये जाते! ...और फिर गाँधीजी की अर्थी का

निकलना...वही हिन्दू जो उन्हें गाली देते थे, आज रो रहे थे, चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे, हाय! हमीं ने उन्हें मार डाला! हाय, हम कितने बड़े पापी हैं! हमने अपने ही राष्ट्रपिता की हत्या कर दी है, जनता! अपढ़, गँवार, धर्म-भीरु...हमारे देश की जनता तो एक बालक के समान है, उसने अपने पिता पर बिगडक़र, आवेश में आकर उन्हें गाली दी, तो उनकी शहादत पर छाती कूट-कूटकर पश्चात्ताप भी कर लिया। लेकिन कांग्रेस के उन प्रौढ़ नेताओं ने, जिन्होंने गाँधीजी का परित्याग कर दिया था, कांग्रेस के गृहमन्त्री सरदार पटेल ने, जिन्हें कई लोगों ने गाँधीजी की हत्या के षड्यन्त्र की सूचना भेजी थी और जिनकी नाक के नीचे ही राष्ट्रपिता की हत्या एक दुष्ट ने कर डाली, क्या प्रायश्चित्त किया? ...बिड़ला मन्दिर में गाँधीजी ने सरदार पटेल से जब कहा था कि दिल्ली में बड़े पैमाने पर मुसलमान मारे जा रहे हैं, तो उन्होंने कहा, आपको बढ़ा-चढ़ाकर संख्या बतायी जाती है। गाँधी जी ने कहा था, फिर भी मारे तो जाते हैं! तो सरदार ने कहा था, मुसलमानों के लिए शिकायत का कोई कारण नहीं! ...बेचारे नेहरू ने मुँह खोला, तो सरदार ने उन्हें चुप करा दिया और मौलाना तो विभाजन के दिन से ही, सभी राष्ट्रीय मुसलमानों की तरह, जैसे हमेशा के लिए ख़ामोश हो गये थे। ...और आज गाँधी-जयन्ती है! काँग्रेस सरकार हर गाँव में गाँधी-चबूतरे की स्थापना करा रही है! क्यों? इसलिए कि शहीद राष्ट्रपिता ने जनता के हृदय में अपना अमर स्थान बना लिया है और राष्ट्रपिता के नाम पर कांग्रेस जनता में अपनी जगह बनाये रखना चाहती है। ...छि:! कांग्रेस १९४२ में, १९४७-४८ में जनता के पीछे-पीछे रही है, जनता के आवेशों से चालित रही है, उसने जनता को ऐसे खतरनाक मोड़ों पर कोई नेतृत्व नहीं दिया। जनता के पीछे-पीछे चलनेवाला नेतृतव जनता को कभी भी आगे नहीं ले जा सकता!

-और गाँधी चबूतरे पर पंचायत बैठेगी, उसमें जुब्ली मियाँ बैठेंगे, जिन्होंने जिन्दगी-भर गाँधीजी को, कांग्रेस को कोसने के सिवा कुछ भी नहीं किया है!

-क्या**?**-चकित होकर मुन्नी बोला।

-राधे बाबू से आजकल उसकी ख़ूब पट रही है**!** उन्होंने उसे भी पंचायत का मेम्बर नामज़द किया है**!**

-और तुम्हें उन्होंने नहीं पूछा, आश्चर्य है**!**

-इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। सभी अवसरवादी लोग अब कांग्रेस में शामिल हो जाएँगे।

-तो क्या वह कांग्रेसी हो गया?

-बिलकुल।

-वाह!

-अच्छा, अब अपना हाल-चाल बतलाओ?

-फिर बताऊँगा, अभी तो किशोर जाऊँगा।

-वहाँ जाकर तुम क्या करोगे? तुम्हें तो उनकी योजना कुछ मालूम नहीं।

-सब मालूम हो जायगा। मैं पहुँच तो जाऊँ।

-तुम पहुँच भी नहीं पाओगे, गाँव के चारों ओर...

-मैं कम्युनिस्ट हूँ और कानपुर रहता हूँ!

-फिर भी मैं कहूँगा, तुम मत जाओ! वहाँ गोली चलेगी...

-मुझे मालूम है। लेकिन वहाँ हमारे साथी एक मोर्चा लेने जा रहे हैं, यह जानकर भी मैं वहाँ न जाऊँ, यह कैसे हो सकता है? तुम कोई चिन्ता मत करो।

उसके बाद कई साल, एक-एक कर बीत गये। मन्ने ने तीन-चार सीज़न तक केन-इन्स्पेक्टरी के लिए अर्ज़ी दी, लेकिन एक बार भी न लिया गया। आख़िर कार्यालय के क्लर्क से जब मालूम हुआ कि वह नाहक़ इण्टरव्यू में आकर अपना पैसा बरबाद कर रहा है, कोई मुसलमान नहीं लिया जायगा, फिर उसके खिलाफ़ तो कम्युनिस्ट होने की भी रिपोर्ट है, तो उसने अर्ज़ी देनी बन्द कर दी। फिर मन्ने ने बहुत हाथ-पाँव मारे कि कोई और नौकरी मिल जाय, लेकिन वह सफल न हुआ। कहीं कोई दुकान या प्रेस खोलने या गंजी या साबुन के कारख़ाना शुरू करने की बात कई बार उसके दिमाग़ में उठी, लेकिन वह इनमें से कोई भी काम न कर सका। बस, मन-ही-मन सोचता रहा, योजना बनाता रहा और दिन बीतते रहे। गाँव में गल्ले या गुड़ के काम में कोई ख़ास फ़ायदा न था, साझे के महाजन बीच में ही रस निचोड़ लेते थे। वह ख़ुद तो गाँव-गाँव घूमकर ख़रीद कर नहीं सकता था। ...कई महाजनों ने उसके रुपये मार लिये और उसके काफ़ी रुपये खिसक गये। तो ख़ुद घर पर ही बनियों से थोक ख़रीद शुरू की। लेकिन इस व्यापार में भी उसने देखा कि छः-छः महीने ग़ल्ले में रुपये फँसाये रहने के बावजूद कोई लाभ न होता। असल में इस तरह के रोज़गार का

उसे कोई ज्ञान न था, गाँवों में बनिये किस तरह खरीद-फ़रोख़्त करते हैं, इसका अनुभव न था। इसी कारण वह मार खा जाता था। आख़िर उसने ईंट के भट्टे का काम शुरू किया, एक-दो साल कुछ फ़ायदा भी हुआ, लेकिन दूसरे साल क़स्बे में कोआपरेटिव के भठ्ठे खुल गये और मुक़ाबिले में उसका भठ्ठा बैठ गया और उसे काफ़ी नुक़सान देना पड़ा। सिर्फ़ खेती से क्या बनता। एक-एक करके एक बेटा और दो बेटियाँ और हो गयी थीं। दूसरे बच्चे बड़े हो गये थे। ख़र्चा बेहिसाब बढ़ गया था। घर की थोड़ी-सी पढ़ाई के बाद शम्मू का पढना बन्द हो गया था। लेकिन दोनों बड़े लडक़े हाईस्कूल की कक्षाओं में पहुँच गये थे। भांजों को थोड़ा-थोड़ा पढ़ाकर उसने उठा लिया था और अब वे खेती में और दूसरे कामों में उसकी मदद करते थे।

मन्ने कितना चाहता था कि वह बाहर जाकर कहीं कोई नौकरी ढूँढ़े या कोई काम ही शुरू करे, लेकिन गाँव के जाल में वह कुछ इस तरह फँस गया था कि बिना ज़ोर लगाये वह निकल न सकता था। हर बार वह सोचता था कि अबकी रोज़गार से रुपया खाली होगा, तो वह लेकर कहीं चला जायगा। लेकिन एक ओर रुपया खाली होता, तो दूसरी ओर फँस जाता। उसने कुछ रुपये इधर-उधर भी चला रखे थे। वह सूद न लेता था, लेकिन असल वसूल कर लेना भी कोई ठठ्ठा न था। फिर भी गाँवदारी के ख़याल से कुछ लोगों का काम चलाना ज़रूरी था। मौक़े-बेमौक़े के लिए अपने कुछ आदमी तो होने ही चाहिए। महाजन उसे एक आँख न देख सकते थे, उनका ख़याल था कि जो मुसलमान गाँव में रह गये हैं, वे उसी के कारण हैं। फिर राजनीति में भी, किसी पार्टी का बक़ायदा सदस्य न होकर भी, वह खुलकर कांग्रेस के विरोध में आ गया था। यह राधे बाबू को असह्य था। लेकिन मन्ने डटकर सबका मुक़ाबिला कर रहा था। उसने समझ लिया था कि इन लोगों में चाहे जो हो, बुद्घि कम है, मन्ने से हमेशा ये लोग मात खाएँगे।

कई तरह से मन्ने से उलझने की कोशिश की गयी। होली और बक़रीद में किसी-न-किसी तरह दंगा कराने की कोशिश की जाती। लेकिन मन्ने बड़ी बुद्घिमानी से उनके मनसूबे तोड़ देता, कभी भी उनके षड्यन्त्र या भडक़ावे में किसी को न आने देता, दब या दबाकर तरह दे जाता। बेदख़ली की बात उठाकर कई बार उसके खेतों पर यह कहकर हल्ला बोला गया कि ये खेत असामियों के हैं, लेकिन मन्ने पहले ही से होशियार रहता और हमलावरों को खेतों पर विरोध में अपने से कहीं अधिक आदमियों को मन्ने की तरफ़ से देखकर भाग जाना पड़ता। फिर असामियों की ओर से मुक़द्दमे लगाये जाते, महाजन असामियों को रुपये से मदद देकर लड़ाते। नतीजा वही होता, जो मन्ने चाहता। मन्ने अपनी सुरक्षा की गोटी हमेशा बैठाये रहता। पटवारी,

क़ानूनगो, तहसीलदार और दारोग़ा को वह हमेशा ख़ुश रखता, इनसे उसका पहले का भी सम्बन्ध था। राधे बाबू या कैलास के बस की यह बात न थी।

फिर झूठ या सच कोई बात खड़ी करके पंचायत में उसे घसीटने की कोशिश की जाती, लेकिन इसके पहले कि उसे पंचायत में बुलवाया जाय, सेक्रेटरी, पंचायत इन्स्पेटर के कहने से, आकर वह मुक़द्दमा ही उठवा देता। राधे बाबू देखते और दाँत पीसकर रह जाते। वे ऊपर पंचायत अफ़सर के पास पहुँचते और इन्स्पेक्टर की शिकायत करते। उन्हें क्या मालूम कि अफ़सर-अफ़सर सब एक होते हैं।

धीरे-धीरे मन्ने के पाँव गाँव में जम गये। उसकी ईमानदारी और बुद्घिमानी के सभी क़ायल हो गये। पंचायत के कई सदस्य उसके विश्वास पात्र बन गये, यहाँ तक कि मामूली-सी एक चाल चलकर मन्ने ने पंचायत के उपसभापति जलेसर लोहार को भी अपनी ओर फोड़ लिया।

फ़ारम के नाम पर जुब्ली जलेसर का एक खेत निकालकर उसे बेचने की फ़िराक़ में था। मन्ने को मालूम हुआ तो एक दिन उसने जलेसर की ओर लुक्मा फेंका कि वह क्यों नही अपने खेत पर क़ब्ज़ा करता, क़ानूनी हक़ तो उसी का है, खेत पर अभी तक उसी का नाम चला आ रहा है? जलेसर को पहले तो उस पर विश्वास ही नहीं हुआ, लेकिन उसकी पीठ पर हाथ रखकर मन्ने जब कहा कि वह बिलकुल ठीक कहता है, वह आगे तो बढक़र देखे कि कौन उसे दख़ल करने से रोकता है, तो जलेसर ने कहा-सच कहते हैं, बाबू?

-मैं झूठ क्यों कहूँगा?

-आप साथ देंगे?

-बचन देता हूँ!

और जलेसर को तो चोट लगी ही थी। उसने सीधे जुब्ली मियाँ से जाकर कहा-आप हमारा खेत छोड़ दीजिए!

जुब्ली मियाँ को राधे बाबू पर पूरा भरोसा था। हँसकर बोले-पागल हुए हो क्या? फ़ारम का कुछ क़ायदा-क़ानून भी जानते हो?

-सब जानते हैं! कल हमारा हल उस पर चलेगा! और आप रोकेंगे, तो समझेंगे।

-तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हुआ है क्या?

-दिमाग़ तो आपका ख़राब हुआ है! धोखा देकर आपने मेरे खेत पर कब्जा कर लिया...

-जाओ-जाओ, गढ़े में मुँह धो आओ!

-जाते हैं, कल उस खेत पर हमारा हल न चढ़ा, तो असल लोहार के बेटा नहीं!

पंचायत में जलेसर के पाँच आदमी थे। यों भी उसकी शक्ति कम न थी। फिर मन्ने की मदद। उसने तो बिना लड़े ही मुक़द्दमा जीत लिया था।

दूसरे दिन सच ही वह हल लेकर अपने खेत पर पहुँच गया।

जुब्ली को मालूम हुआ, तो वह राधे बाबू के पास दौड़ा-दौड़ा आया।

खेत पर भीड़ लग गयी। मन्ने भी अपने आदमियों को साथ लेकर वहाँ पहुँच गया।

जलेसर ने आगे बढक़र कहा-मन्ने बाबू से जियादा कानून-कायदा जाननेवाला कोई दूसरा नहीं है। वे मुसलमान भी हैं, जुब्ली मियाँ के साथ वे कोई ग़ैरइन्साफी नहीं कर सकते, यह मानी हुई बात है। हम उन्हें ही इस मामले में सरपंच मानने को तैयार हैं। वह जो फैसला दे देंगे, हम मान लेंगे।

किसान चिल्ला उठे-जलेसर ठीक ही तो कहता है! जुब्ली मियाँ को इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए!

मन्ने का नाम सुनते ही राधे बाबू और जुब्ली की आधी जान सूख गयी। राधे बाबू कुछ बोलने ही जा रहे थे कि मन्ने ने आगे बढक़र कहा-खेत जलेसर का ही है, उसे वापस मिलना चाहिए!

किसानों ने फिर तो हल्ला मचा दिया। हो गया! फैसला हो गया!

और जलेसर ने खेत में घुसकर हल की मुठिया पकड़ ली। राधे बाबू और जुब्ली अपना-सा मुँह लेकर वापस चले आये।

ऐसी शिकस्त की उम्मीद राधे बाबू को न थी। लेकिन वे जानते थे कि कम-से-कम इस मामले में कोई हिन्दू उनका साथ न देगा। वे चुप लगाकर मौक़े की तलाश करने लगे।

लेकिन वे बहुत दिनों तक गाँव में न रह सके। बाप की छोड़ी और बयालीस में जो इनके घर का नुक़सान हुआ था, उसके मुआवज़े में सरकार से मिली हुई रक़म वह खा-पका

चुके थे। जो थोड़ी-बहुत बची थी, वह उनके लडक़े की शादी में स्वाहा हो गयी। काम तो कुछ करते न थे। मुन्नी की मदद से कब तक उनकी खर्चीली ज़िन्दगी चल सकती थी? फिर धीरे-धीरे गाँव का विश्वास भी वे खोते जा रहे थे। उनकी दुश्चरित्रता की कितनी ही कहानियाँ लोगों में चुपके-चुपके कही-सुनी जाने लगी थीं। आख़िर उन्हें किच्छा रोड (नैनीताल) में सरकार की ओर से जब पच्चीस एकड़ जमीन मिल गयी, तो एक दिन वे वहाँ के लिए कूच कर गये। उपसभापति को वह पंचायत का चार्ज दे गये।

अब एक तरह से जलेसर की पीठ के पीछे पंचायत पर मन्ने की ही तूती बोलने लगी। लेकिन मन्ने के भाग्य में कदाचित् शान्ति लिखी ही न थी। एक राधे बाबू गये, तो उनकी जगह पर उनकी बिरादरी के कई लोग तैयार हो गये। और द्वेष का सिलसिला कभी ख़त्म होने को न आया। ऊपर से एक संगीन बात और भी हो गयी।

एक दिन रात को किसी मुक़द्दमे के सिलसिले में ज़िले से होकर मन्ने लौटा, तो शेरवानी खूँटी पर टाँगकर ज़नाने में ही सो गया। इधर महशर को मन्ने की शेरवानी की जेबें टटोलने की आदत पड़ गयी थी। वह जो भी पैसा उनमें पाती, हड़प लेती। मन्ने को मालूम हो जाता, तो भी वह कुछ न कहता। सोचता, चलो, इसी तरह वह कुछ जमा कर लेगी, यों तो दिया नहीं जाता। महशर ने काफ़ी रुपया इस तरह जोड़ लिया था। इस रुपये से गहना बनवाने का उसका इरादा था। लेकिन उस दिन जो उसने शेरवानी की ऊपर की जेब में हाथ डाला, तो चन्द नोटों के साथ एक छोटी लाल पुडिया भी उसके हाथ में आ गयी। उसने खोलकर देखा, तो उसमें एक बड़ी ही ख़ूबसूरत, छोटी-सी कील थी। ख़याल आया, शायद मियाँ उसके लिए लाये हैं। वह मन-ही-मन बहुत ख़ुश हुई, चलो, इन्हें कुछ तो तौफ़ीक़ हुई। लेकिन उसे अपने हाथ से पहन लेना ठीक न लगा। उसने कील फिर वापस जेब में रख दी। सोचा, आप ही देंगे।

लेकिन एक दिन, दो दिन, तीन दिन बीत गये और मन्ने ने कील का नाम ही न लिया, तो आख़िर यह समझकर कि भुलक्कड़ दास के ख़याल से ही कील कहीं उतर न गयी हो, एक दिन महशर मुस्कराकर बोली-अजी! तुम एक कील लाये थे न?

मन्ने एक ही पल को तो सकते में आ गया। फिर सम्हलकर बोला-तुम्हें कैसे मालूम?

-जादू के जोर से!-हँसकर महशर बोली-तुम्हारी कोई बात मुझसे छुप थोड़े ही सकती है!

-एक आदमी ने मँगायी थी,-मन्ने लापरवाह बनकर बोला-तुम्हें चाहिए क्या?

महशर तो जैसे सौ मन की एक मन हो गयी। तुनककर बोली-नहीं जी! मेरे पास तो दर्जनों पड़ी हैं!-और उसके पास से धम-धम पाँव बजाती चली गयी।

लेकिन दूसरे ही दिन कील का राज़ खुल गये। खण्ड से बसमतिया चूल्हे का लावन पहुँचाने ज़नाने आयी थी। महशर ने देखा, उसके काले चेहरे पर कील वैसे ही चमक रही थी, जैसे बादल में बिजली! और महशर के दिल पर जैसे बिजली गिर गयी! मारे ग़ुस्से और नफ़रत के अन्दर-ही-अन्दर भुनकर, ऊपर से वह मुस्कराकर बोली-क्यों रे, यह कील तुझे किसने दी, बड़ी ख़ूबसूरत है!

बसमतिया शर्माकर बोली-मिली है एक जगह से।

-कहाँ से मिली है? बता, मैं भी एक मँगाऊँगी।

-बाबू तो लाये थे!-ख़ुश होकर बसमतिया बोली।

-हरामज़ादी!-महशर के लिए अपने को और सम्हालना मुश्किल हो गया। वह लपककर उसका झोंटा पकडक़र चीख़ उठी-क्या ताल्लुक़ है तेरा बाबू के साथ? बता, नहीं तेरी नाक तराश लूँगी!

बसमतिया को क्या मालूम था कि ऐसा होगा। कुछ न समझ पाकर वह डर के मारे रोने लगी।

कई औरतें वहाँ जमा हो गयीं। पूछने लगीं-क्या बात है?

लेकिन महशर को उनका जवाब देने का कहाँ होश था! उसने जूती उतारकर पटापट बसमतिया को मारना शुरू कर दिया। औरतों ने उसे छुड़ाया न होता, तो न जाने वह क्या कर डालती! बसमतिया रोती-चिल्लाती भाग खड़ी हुई।

अल्हड़ बसमतिया खण्ड में आकर माँ की गोद में गिरकर भोकार पारकर रोने लगी।

व्याकुल होकर माँ ने पूछा-क्या हुआ? इस तरह तू काहे रो रही है?

बड़ी देर तक बसमतिया बस रोये गयी, कुछ नहीं बोली। माँ ने आँचल से उसके आँसू पोंछे, पीठ सहलायी, फिर भी उसने कुछ न बताया, तो बिगडक़र बोली-रोये ही जायगी कि कुछ बोलेगी भी! अब चुप रह, नहीं तो वह तबड़ाक लगाऊँगी कि मुँह फिर जायगा?

तब रोना बन्द कर, हिचकी लेती हुई बसमतिया बोली-दुलहिन ने मेरा झोंटा पकडक़र जूती से पीटा है!

माँ को तो जैसे आग लग गयी। जलकर बोली-काहे?

-यही कील देखकर!

-ओ-हो! बड़ी आयीं मारनेवाली!-बिगडक़र माँ बोली-अपने खसम को काबू में रखें न! अपने खराब तो दूसरे को का दोस? मार दिया मेरी बच्ची को! आने दे बाबू को! तू चुप रह!-कहकर वह बेटी का मुँह आँचल से पोंछने लगी।

-का कहना है बाबू से?-कहीं बाहर से अन्दर सार में आता हुआ मन्ने बोला-यह क्यों रो रही है?

-रो रही है आपकी कील की बदौलत!-नाक चढ़ाकर मुनेसरी बोली-वह कील किस मतलब की कि जिसे पहनने से नाक कटे! दे दे रे, यह कील निकालकर!

बिलखती हुई बसमतिया कील निकालने लगी, तो मन्ने बोला-हुआ क्या? बताती क्यों नहीं?

-बताएँ का, घर लावन पहुँचाने गयी थी, तो दुलहिन ने...

मन्ने के सातों तबक़ रोशन हो गये। पूरी बात सुने बिना ही वह आपा खोकर चीख़ पड़ा-यह कील पहनकर वहाँ गयी ही क्यों? मैंने तो मना किया था न?

-अब इसी का दोस है?-कड़ी होकर मुनेसरी बोली-इतना तीन-पाँच इसे का मालूम था?

-तुझे तो मालूम था। तू तो इसकी तरह बच्ची नहीं थी?

-हमीं पर आप भी बिगड़ते हैं? कमज़ोर पर ही सब बल दिखाते हैं! हमारी फूल-सी बच्ची को उन्होंने मार दिया! ऊपर से आप भी जले पर नमक छिडक़ रहे हैं! इज्जत भी दो और ऊपर से जूता भी खाओ! ना, बाबा, इससे तो अच्छा कि इसे इसकी ससुराल भेज दें! सूखी खाकर वहाँ इज्जत से तो रहेगी!

-कल भेजना हो तो आज ही भेज दे!-भडक़कर मन्ने बोला-अपनी औक़ात नहीं समझती! गयी थी दुलहिन को कील दिखाने! मारें नहीं तो क्या इसके लिए पलंग बिछाएँ?

मुनेसरी भी बुलका चुलाने लगी। बोली-बड़े आदमियों की ही इज्जत तो होती है, हमा-सुमा की तो टके सेर गली-गली बिकती है! हमें का मालूम था कि ऊपर से काका-काकी, अन्दर से दगाबाजी! इसी का डर था तो दिल नहीं लगाना चाहिए था!

-दिल लगाया था नाक कटाने के लिए, समझी?

-जिसकी नाक लम्बी होती है, वह दूसरे का बासन सूँघता नहीं फिरता!

-तू चुप रहेगी कि बात बढ़ाएगी?

-चुप काहे रहें? लडक़ी को खराब किया, अब कहते हैं चुप रहो!

-सैकड़ों लड़कियाँ देखी हैं तेरी बिरादरी की! बढ़-बढक़र बात न कर!

-हमसे भी कोई बड़ा घर देखने से नहीं छूटा है! दो रोटी देते हैं, तो का जबान पर भी ताला लगा देंगे?

-निकल जा तू यहाँ से!

-निकल का जायँ? आपने लडक़ी रखी है, इसकी परबस्ती का इन्तज़ाम कर दें! फिर आपका दरवाज़ा झाँकने भी आएँ तो जो सजा चोर की, वह हमारी!

बाप रे! इस औरत का साहस तो कोई साधारण नहीं! कहाँ इसकी नज़र है!
बोला-ओ-हो! तो ये मन्सूबे हैं तेरे!

-काहे न हों। लडक़ी आपके पास सोयी है कि कोई ठठ्ठा है! आप इस तरह हमें निकालेंगे, तो पंचायत है, कचहरी है...

-तो तू मेरे नाम का डंका बजवाएगी?

बसमतिया बहुत-सी बातें समझ रही थी, बहुत-सी नहीं।

कभी वह मन्ने का मुँह ताकती कभी माँ का। आख़िर घबराकर उठ खड़ी हुई और बिफरकर बोली-चल रे माई, चल! ...रात कहे पिया नथिया गढ़ा देइब, होत भिनसार बिसरि गइल बतिया। ...इन लोगन के मुँह और गाँड़ में कोई फरक नहीं!

-चले काहें?-और जमकर बैठती हुई माँ बोली-आने दे भिखरिया को! आज सब सलटाकर ही चलेंगे, चित चाहे पट!

लेकिन मन्ने आप ही टल गया। वह अँधेरे में ही अपने कमरे में जा बैठा। उसकी हालत बड़ी ख़राब थी। ...उसे जो डर था, आख़िर सामने ही आया। चुटीली नागिन को फिर छेड़ मिली थी! ...कमबख़्त यह लडक़ी! कितना समझा दिया था कि ज़नाने में कभी कील पहनकर न जाना! लेकिन यहाँ सौत को जलाये बिना कलेजा कैसे ठण्डा होता? पहुँच गयी हरम में! ...अब? फिर वही नक्शा सामने आएगा। मुन्नी की वजह से जो लकीरें धीरे-धीरे मिट रहीं थीं, फिर उन पर स्याही फिर जायगी और ज़िन्दगी दोज़ख़ बन जायगी। .. इधर इसकी माँ के ये दिमाग़ हैं! ...हुँ:! पंचायत करायगी! ...कचहरी जायगी! ...बौना चाँद छूएगा! ...कितनी बार तो ससुराल गयी, क्यों भाग-भाग आती है? ...इज्जत! इतना ही इज़्ज़त का ख़याल था तो माँ होकर क्यों बेटी की इज़्ज़त की कमाई खाती है? कहती है और किसी के यहाँ यह नहीं आती-जाती। बड़ी सतवन्ती बनी है! सब मालूम है, सत्तर चूहा खाकर बिल्ली चली हज को! मियाँ की रखेल बनेगी! माहाना लेगी? ...रात कहे पिया नथिया गढ़ा देइब, होत भिनसार बिसरि गइल बतिया? ...एक कील पर तो यह हाल है, कहीं नथिया गढ़ा दे, तो जहन्नुम रसीद न कर दिया जाय। ...लेकिन क्या सटीक बात कही कमबख़्त ने! एक ही बात तो बोली, लेकिन फिर बोलती बन्द कर दी उसकी! ...सही ही तो कहती है! कितने, कैसे-कैसे वादे किये हैं उसने, कोई हिसाब है? और पूरे कितने किये? वह कितना झूठा हो गया है, कितना धोखेबाज़ बन गया है! मतलब निकालने का वक़्त आता है, तो कैसे बढ़-बढक़र बातें करता है, कैसे सब-कुछ उसके क़दमों पर उँड़ेल देने के लिए तैयार हो जाता है और जब मतलब निकल जाता है, तो कहाँ के तुम और कहँ के हम! ...उसकी माँ कौन-सी झूठ बात कहती है? उसने क्या उससे वादा नहीं किया है कि जब तक वह जीता रहेगा, उनका ख़र्चा चलाता रहेगा? ...तो आज उनसे इस तरह की बातें क्यों कीं? कील पहनकर ज़नाने में चली गयी, तो कौन-सा गुनाह उसने कर दिया? ऐसा था, तो उसने उसे कील दी ही क्यों? क्या इस तरह की बातें बहुत दिनों तक छुपी रहती हैं? ...फिर महशर को तो देखो, कमबख़्त ने उसे पीटके हीं रख दिये! अब कमान पर तीर चढ़ाये उसका इन्तज़ार कर रही होगी। ...आज ख़ैरियत नहीं, वह पगड़ी उछाले बिना न रहेगी, सब करम करके रख देगी! ...और मन्ने की आँखों के सामने वही गोरखपुरवाले दृश्य घूम गये।

लालटेन जलाकर भिखरिया कमरे में आया स्टूल पर रखता हुआ बोला-माँ बेटी रो रही हैं, सरकार।

-तो मैं क्या करूँ? जैसी करनी वैसी भरनी!

-अभी बच्ची ही तो है, सरकार! गलती तो...

-मालूम है, उसकी माँ क्या कह रही है?

-कहने ही से का कुछ हो जाता है, सरकार? सरकार तो माई-बाप हैं!

-समझा देना उन्हें अच्छी तरह कि वे फिर कभी ज़नाने का रुख़ न करें। कोई ज़रूरत हो, तो तुम्हीं जाया करो!-और जेब से एक पाँच रुपये का नोट निकालकर उसकी ओर फेंक दिया।

नोट उठाता हुआ भिखरिया बोला-बहुत अच्छा, सरकार,-और वह सार में चला गया।

थोड़ी देर बाद मन्ने ने बसमतिया की आवाज़ सुनी-अब ठेंगा आती है इनके यहाँ!

वह मुस्करा उठा।

फिर भिखरिया की आवाज़ आयी-चल-चल! बढ़-बढके़ बात की, तो ज़बान खींच लेंगे।

और फिर उनके जाने की आवाज़ आयी।

मन्ने क्या सचमुच बेहया हो गया है? उसे किसी बात की ग़ैरत नहीं, किसी बात की फ़िक्र नहीं, किसी बात का डर नहीं है? क्या यह सब-कुछ घोलकर पी गया है? क्या वह बिलकुल बिगडक़र ही रह गया है? ...लोग उसे क्या समझते हैं और दरअसल वह है क्या? एक सिरे से वह सारी दुनियाँ को ही धोखा दे रहा है। यह कैसी ज़िन्दगी है? क्या यही ज़िन्दगी उसे जीनी थी? ...मन्ने को बड़ा अफ़सोस होने लगा, उसने यह अपने को क्या बना लिया है? ...मन्ने जिस रूप में आज अपने सामने था, ख़ुद ही अपने को पहचान न पा रहा था। आज कौन-सा दुर्गुण उसमें नहीं है? इन्सानियत के नाम पर आज उसमें क्या रह गया है? यह छोकरी, जिसे दुनियाँ का कोई ज्ञान नहीं, आज कह गयी, इन लोगन के मुँह और...में कोई फरक नहीं। ...तुम इन्सान हो कि सूअर? ...तुम आदमी हो कि आदमी की पूँछ? ...और मन्ने की आत्मा रो उठी। सच ही ये सब उससे बेहतर इन्सान हैं। ...महशर, मुन्नी, बसमतिया...बसमतिया शायद सच ही किसी और के पास न आती-जाती हो। ...एक दिन कैसे उसने हँस-हँसकर बताया था कि राधे बाबू उसके घर के चक्कर लगा रहे हैं...शायद उससे राधे बाबू की नाराज़गी का एक यह भी सबब हो। तो क्या सच ही बसमतिया उसे चाहती है? क्या इसी कारण वह ससुराल नहीं जाती, जाती भी है तो भाग आती है? कहती तो ऐसा ही है, लेकिन...लेकिन वह तो अपने दिल में कुछ वैसा महसूस नहीं करता, जैसा आयशा के बारे में कभी किया था। ...यह तो महज़...और क्या रखा है इसमें? ख़ामख़ाह के लिए एक लडक़ी की ज़िन्दगी ख़राब कर रहा है। यही करना है तो यहाँ लड़कियों की क्या कमी है? लेकिन उसमें राधे

बाबू की तरह बदनाम जो हो जाने का डर है। वह बदनाम नहीं होना चाहता है, इसीलिए तो वह बूड़क़े पानी पीता है। लेकिन अब उसकी बीवी ही ढोल बजा-बजाकर उसका जो गुणगान शुरू करेगी...तो वह कैसे किसी को मुँह दिखाएगा? नहीं-नहीं, यह बात बढऩी नहीं चाहिए! जो हुआ, बहुत हुआ। अब भी मन्ने अपने को बचा सकता है। वह महशर को समझाएगा कि वह ख़ामोश रहे, इसमें उसकी भी बदनामी है। वह उससे वादा करेगा कि फिर कभी उसे उससे शिकायत का कोई मौक़ा नहीं मिलेगा। वह बसमतिया को ससुराल भेजवा देगा। बेचारी जाय, अपनी ज़िन्दगी सुधारे, घर बसाये।

बड़ी रात गये, यह सोचकर कि सब सो गये होंगे, मन्ने अपने मन में ख़ामोश भय का सन्नाटा लिये ज़नाने में गया। महशर के कमरे में दाख़िल हुआ, तो लालटेन सहमी-सहमी जल रही थी। बच्चे क़तार में लगी चारपाइयों पर लुढक़-पुढक़कर इधर-उधर सो गये थे। उनके बीच में अपने पलंग पर, दरवाज़े के दूसरी ओर मुँह किये महशर भी पड़ी हुई थी। मन्ने ने एक बार पूरे कमरे को भाँपा। फिर दरवाज़े से बाहर झाँककर देखा। सब सो गये मालूम होते थे, लेकिन उसे लगा कि कोई भी सोया नहीं है, सब दम साधे पड़े हुए हैं और किसी विस्फोट की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसके जी में आया कि जैसे वह आया है, वैसे ही चुपचाप चला जाय और खण्ड में जाकर सो जाय। यहाँ का सन्नाटा तो टूटा नहीं कि एक ज़लज़ला आ जायगा और फिर क्या होगा, कौन जाने! लेकिन फिर उसे ख़याल आया कि यह सन्नाटा अगर आज न तोड़ा गया, तो जाने कल और कितना भयानक हो उठे! वह कमरे में मुडक़र महशर के पलंग के पास जा खड़ा हुआ। उसने देखा, महशर सो नहीं रही थी, वह कल साधे पड़ी थी, उसका सीना स्वाभाविक साँस की गति से फूल बैठ नहीं रहा था, बल्कि ऐसा लग रहा था, जैसे वह हमला करने के लिए दम साध रही हो। मन्ने काफ़ी देर तक खड़ा-खड़ा सोचता रहा कि क्या करे, क्या न करे। महशर सगबगा भी नहीं रही थी। काश, उसकी ही ओर से पहल हो जाती। काश, वही कुछ कहती या करती! ...मन्ने खड़ा-खड़ा थक गया तो पलंग की पाटी पर बैठने लगा...कि तभी महशर ने उछलकर उसे ऐसी लात मारी कि वह अगर बच न गया होता, तो उसकी कमर सीधी हो गयी होती।

बैठकर नागिन की तरह फुँफकारती हुई महशर बोली-मेरे पलंग पर अगर तुमने पाँव रखा, तो ठीक न होगा! जाओ उसी कलमुँही के पास! मैंने समझ लिया कि तुम सूअर ही हो! या अल्लाह तौबा!- और उसने ढेर-सारा थूक पलंग के नीचे फ़र्श पर थूक दिया और ज़ोर-ज़ोर से हाँफने लगी।

मन्ने बग़ल की चारपाई की पाटी पर हाथ पर माथा टेककर बैठ गया।

महशर फिर मुँह फेरकर लेट गयी। कपड़ों की भी उसे सुध न थी। बाल बिखरे हुए थे। साँस ज़ोर-ज़ोर से चल रही थी।

बड़ी देर तक मन्ने ठण्डी साँसे लेता रहा। आख़िर बोला-एक बार और मुझे माफ़ कर दो...फिर...

महशर उछलकर उसके रू-ब-रू बैठ गयी। और दाँत पीसकर बोली-एक बार नहीं, सौ बार भी मैं माफ़ कर दूँ, फिर भी तुम बदलनेवाले नहीं, यह मुझे मालूम हो गया। कुत्ते की दुम कभी भी सीधी नहीं होती। ...मैं भी कहती थी, खण्ड से ऐसी मुहब्बत क्यों हो गयी है! ...जाओ, चले जाओ यहाँ से...मैं तुम्हारा मुँह भी नहीं देखना चाहती!- और महशर फिर मुँह फेरकर लेट गयी और सिसकने लगी।

मन्ने को तब ढाढस बँधा। गरज-तरज शायद अब रुक जाय। आँसू बता रहे हैं कि अब भी उनके बीच कुछ ऐसा शेष है, जो परिस्थिति के ऊपर है, जो टूटना नहीं चाहता, जो दिल में कहीं कसककर अपने ज़िन्दा रहने का सबूत देता है।

सिसकी तेज़ होती गयी। सिसकी के तार में रुदन के स्वर बिंधने लगे। क़रीब था कि रुदन फूट पड़ता कि मन्ने धीरे से महशर के पलंग पर बैठ गया। महशर की सारी आद्रता जैसे एक क्षण में सूख गयी। पलटकर बोली-तुम्हें शर्म नहीं आती?

सिर झुकाकर मन्ने बोला-आती है।

-आती, तब तो कभी ऐसी हरकत ही नहीं करते!

उसके मुँह की ओर हाथ बढ़ाते हुए मन्ने बोला-इस बार और माफ़ कर दो! खिसककर महशर बोली-मुझे छूना मत!

-मुझे बड़ी भूख लगी है!

-तो जाकर दोज़ख भरो! डोली में खाना रखा है!

-और तुम?

-ओ-हो!

-आज से खण्ड छोड़ दूँगा। यहीं बाहर बैठक में रहूँगा। मेरे कहने से एक बार और आज़मा लो। तुम्हें शिकायत का अब कोई मौक़ा न दूँगा!

-मुझे तुम पर एतक़ाद नहीं! गले तक पानी में समाकर कहोगे, तो भी न मानूँगी! बहुत देख लिया, तुम इन्सान नहीं हो! ...ये बच्चे दामन पकड़ते हैं, वर्ना तुम दोज़खी के साथ एक पल को भी न रहती! तुमने मेरी मिट्टी ख़राब करके रख दी!-और महशर फूट-फूटकर रो पड़ी।

-मुझे इसका बेहद अफ़सोस है। इसके लिए तुम जो सज़ा चाहो दो, मेरा सर ख़म है। लेकिन दिल से माफ़ कर दो!-मन्ने ने कहते हुए महशर का हाथ पकड़ लिया और उसे ज़ोर से अपने सिर पर मारते हुए बोला-तुमने माफ़ न किया तो मैं पागल हो जाऊँगा!

महशर ने अपना हाथ छुड़ा लिया। आँसू पोंछती हुई बोली-तुमसे अब ख़ुदा ही समझेगा! तुम्हारा किया तुम्हारे साथ और मेरा मेरे साथ! ...या अल्लाह, तौबा!- और उसने घड़ी की ओर देखा और पलंग के नीचे उतरकर, सिरहाने रखे बधने को उठाकर बाहर वज़ू करने चली गयी।

मन्ने हैरान था कि इतनी आसानी से इतना बड़ा और संगीन मामला कैसे सुलझ गया! उसने तो सोचा था कि महशर वह हो-हल्ला मचाएगी कि सारा घर जाग जायगा और सबके सामने वह उसका पानी उतारकर रख देगी और दीवानी होकर जाने क्या कर बैठेगी। ...महशर ने शुरू भी कुछ वैसे ही किया था, लेकिन मन्ने की शीतलता, सहनशीलता, आत्मसमर्पण तथा स्वीकारोक्ति ने जैसे आग पर पानी डाल दिया। मन्ने को आश्चर्य हो रहा था कि उसने कैसे महशर के क़दमों में अपने को डाल दिया! ...उस वक़्त कोई उसे देखता, तो क्या यह समझता कि यह वही मन्ने है, जो दूसरों को ज़नमुरीद कहकर उनकी खिल्ली उड़ाता है। ...मन्ने अपनी इस सफलता पर और महशर की क्षमाशीलता पर ख़ुश था। महशर के अनेक गुणों से वह परिचित था और आज एक और गुण भी उसने खोज निकाला कि महशर अपने क़दमों पर गिरे हुए को ठोकर नहीं लगाती, बल्कि उसके गुनाहों को माफ़ कर देती है!

अगले दिन से मन्ने एक बदला हुआ इन्सान था। उसने ज़नाने के बाहर कोठे पर अपने बैठने का इन्तजाम किया। बार-बार घर में जाने लगा। बक्से में से टोपी निकलवायी और पाँचों वक़्त की नमाज़ पढने लगा। घर की औरतें उसके परिवर्तन पर चकित थीं, मुसलमान उसे देखकर हैरान थे कि अचानक यह इन्क्लाब कैसे आ गया? वे उससे पूछते, तो वह मुस्कराकर रह जाता। महशर की ख़ुशी जैसे एक ज़माने के बाद वापस आ गयी थी, जैसे उसके खोये मियाँ उसे वापस मिल गये हों, वह फूली न समा रही थी। मन्ने ने उसे सन्दूक़ की चाभी दे दी और जो ज़रूरत पड़ती, उसी से माँगता। उसने यह

भी वादा कर दिया कि अबकी गोरखपुर जाय, तो अपने लिए एक पूरा सेट गहनों का ख़रीद ले।

मन्ने को सब बड़ा अच्छा लग रहा था। महशर उसे अपने हाथ से शेरवानी पहनाती, अपने हाथ से उसके बाल काढ़ती, अपने साथ बैठाकर उसे खाना खिलाती और अपने हाथ से उसके मुँह में पान देकर उसे घर से बाहर निकलने देती। नाश्ते या खाने या सोने में ज़रा भी देर होती, तो वह तुरन्त किसी लडक़े को भेजकर बुलवा लेती और मन्ने हज़ार काम छोडक़र भी, जहाँ होता, वहीं से घर को चल पड़ता।

एक हफ्ते ही में जैसे घर-बाहर सब बदल गया। जैसे अमावस्या के बाद अचानक ही पूर्णिमा आ गयी हो, और सब-कुछ को चाँदनी से नहला दिया हो। ...मन्ने सोच रहा था कि होली चार दिन रह गयी है, मुन्नी छुट्टी में आएगा, तो उसके इस परिवर्तन को देखकर क्या सोचेगा, क्या कहेगा? शायद पूछेगा कि तुम्हें इतने दिनों बाद मुसलमान होने की क्या सूझी? वह उसे क्या जवाब देगा? ...सच ही उसने जो अपने को इस तरह बदल लिया है, उसका क्या कारण है? उसके पीछे क्या मन्ने की कोई समझ है, या योंही महशर को ख़ुश करने के लिए उसने यह-सब कर लिया है? अगर ऐसा भी है तो इसमें क्या बुराई है? क्या बीवी की ख़ुशी के लिए आदमी कुछ नहीं करता? करता तो है, लेकिन अचानक ही यह बीवी की ख़ुशी उसे इतनी प्यारी कैसे हो गयी...क्या सुबह का भूला शाम को वापस नहीं आता? ...तो क्या यह विश्वास कर लिया जाय कि वह घर लौट आया है और फिर कभी रास्ता नहीं भूलेगा? मन्ने मन-ही-मन हँस पड़ा और बोला-यार, मैंने सोचा, अपना ग़म, अपनी ख़ुशी देखते हुए तो सारी ज़िन्दगी बीत गयी। हमेशा बच्चों को पेरते रहे, कभी उनके मन की कुछ न होने दी। अब ज़रा उनकी मर्ज़ी भी चले, उनकी ख़ुशी भी मन ले। वर्ना क्या कहेंगे ये कि एक मियाँ थे एक अब्बा थे, एक भाई थे, एक मामा थे, जिन्होंने कभी उनकी ख़ुशी का कोई खयाल न किया, बस, एक शिकंजे में सबको कसे रहे...जो मिलता है खाओ...जो आता है पहनो...जैसे होता है रहो-सहो...ना-नकुर किया तो हमसे बुरा कोई नहीं! सो, मैंने पतवार उनके हाथ में छोड़ दी है। ...अब उनकी ही ख़ुशी के लिए सब करता हूँ...साफ़ कपड़े पहनता हूँ, अच्छा खाना खाता हूँ, पाँचों वक़्त की नमाज़ पढ़ता हूँ। अब हाय-हाय करना छोड़ दिया है। ज़िन्दगी का यह मज़ा भी क्यों रह जाय। ...देखो, कब तक चलता है। सोचता हूँ, काफ़ी रुपया रहता, तो इसी तरह बाक़ी ज़िन्दगी काट देता। सच तो यह है, यार कि मैं थक गया...

-का, बाबू, काम हो गइल दुख बिसरि गइल?

तन्मयता में मन्ने यह सुनकर ऐसे चौंका, जैसे किसी ने उसके मुँह पर एक झापड़ रसीद कर दिया हो और कहा हो, यह क्या बकवास कर रहा है? ...उसने आँखें झपकाकर सामने देखा, मुनेसरी खड़ी थी!

-बोला-तुम यहाँ क्यों आयी?

चौखट पर पाँवों पर बैठकर, बायें ठेहुने पर बायीं कुहनी टेक, हथेली पर ठुड्डी टिका, मुनेसरी बोली-सरकार ने खण्ड पर आना-जाना ही बन्द कर दिया, तो हम का करें? ...बसमतिया डहक-डहक रो रही है। आज भेजकर ही मानी। उसकी तबीयत ठीक नहीं।-उसका स्वर फुसफुसाहट में बदल गया-उलटी हो रही है। पिछले महीने कुछ बताया ही नहीं। डर के मारे माँड़ हो रही है। मिलने को बुलाया है, खण्ड में बैठी है।

मन्ने को कलेजा काँप उठा। फिर भी अपने को सम्हालकर सूखे गले से बोला-क्या कहती है!

-जो कहते हैं, उसमें राई-रत्ती का फरक नहीं है!-फुसफुसाकर ही वह बोली-दो अँजोर चले गये। बीचोबीच हुई थी, अब तीसरे अँजोर में कै दिन रह गये हैं, सरकार ही जोड़ लें। ...उधर उसके गले में फँसरी पड़ी, इधर सरकार ने मिलना-जुलना बन्द कर दिया, वो डहके नहीं तो का करे? सरकार ने बाँह पकड़ी है, चाहे अब उसकी लाज राखें, चाहे उसे कुएँ में ढकेल दें, सरकार के ही हाथ में अब सब है! हम तो करमजरे हैं ही!

-अच्छा, तू जा, भिखरिया को भेज दे।-अन्दर की घबराहट पर क़ाबू न पा सकने के कारण उसे टालने के लिए मन्ने बोला।

-सरकार आएँगे न?

-हाँ-हाँ! तू जाकर तुरन्त भिखरिया को भेज!

-कन्नी तो नहीं काटेंगे?

-नहीं-नहीं तू भिखरिया को भेज!

उठती हुई मुनेसरी बोली-तो दगा न दीजिएगा। जानते हैं न, वो कितनी अधिरजी है! रोते-रोते आँखें अड़हुल कर ली हैं!-और वह सीढियाँ उतर गयीं।

मन्ने की तो जान ही सूख गयी। यह तो वही हुआ कि रोने को थे कि आँख ही फूट गयी! उसने तो सोचा था कि वह इस-सबसे किनारा-कशी कर लेगा। और अब सकून की

ज़िन्दगी बसर करेगा और यहाँ देखता है कि उसके पाँव पहले ही दलदल में फँस गये हैं। अब क्या होगा? मुनेसरी एक ही तेज़-तर्रार औरत है, अब तो उसके हाथ एक हथियार भी लग गया, वह क्यों छोड़ेगी? मन-ही-मन वह मूसलों ढोल बजा रही होगी, फँसे अब जाके मियाँजी, कहाँ जाते हैं अब छूटके! ...नाक तो कटेगी ही, साथ ही ज़िन्दगी-भर के लिए एक जंजाल सिर पर आ जायगा। ...और फिर महशर...बच्चे...उसकी ख़ुद की ज़िन्दगी...ओह! यह क्या हो गया? उसने यह कब सोचा था कि ऐसा भी हो सकता है। ...वाह, मियाँ, वाह! यह तो वही बात हुई कि गुड़ खाएँगे और फोड़ों से डरेंगे! यह तो होना ही था एक दिन। ...कितनी बार सोचा कि कोई एहतियात बरती जाय, लेकिन किया कुछ न गया। और आख़िर मूसल सिर पर आ ही गिरा! ...

भिखरिया आया, तो कुछ देर तक तो मन्ने के मुँह से कोई बात ही नहीं निकली।

आख़िर भिखरिया ही बोला-सरकार ने बुलाया था...

-हाँ, बैठ,- मन्ने को सूझ न रहा था कि बात कैसे शुरू करे। योंही बोला-क्या हाल-चाल है?

-सब ठीक है, सरकार। बैलों को सानी-पानी कर रहा था कि मुनेसरी ने आपका सनेसा कहा।

-और कुछ कह रही थी?-बात छेड़ी मन्ने ने।

भिखरिया चुप लगा गया।

मन्ने ने ही इशारा करके, उसे पास बुलाकर, फुसफुसाकर कहा-अगर उसकी बात सही है, तो तुम्हें हमारी कुछ मदद करनी पड़ेगी।

-आप जो कहिए, सरकार, मैं हाज़िर हूँ।

-तो कुछ हो सकता है?

-होने को, सरकार, का नहीं होता? लेकिन ढीढ़-पेट की बात हमा-सुमा के घर छुपती नहीं, आँच तो लगके ही रहती है। आप लोगन के घर की बात और होती है कि सब तुप-ढँक जाता है।

-नहीं, आँच ही लग गयी, तो फिर बात क्या बनी?

-फिर जो सरकार कहें।

मन्ने सोचने लगा। कुछ सूझ ही न रहा था।

भिखरिया ही बोला-एक बात हो सकती है।

-क्या?-उत्सुक होकर मन्ने बोला!

-उसे काहे नहीं महीना-खाड़ के लिए उसकी ससुराल भेज दिया जाय?

मन्ने के होठों पर एक मुस्कराहट खेल गयी। उसके जी में आया कि भिखरिया को गले से लगा ले। बोला-तो फिर वही करो, खर्चा कल ले लेना। कोई दिक्कत तो नहीं पड़ेगी?

-हरामजादी मुनेसरी सायत न माने, उसका मुँह भी भरना पड़ेगा...

-जो तू कहेगा, हो जायगा। लेकिन यह बला मेरे सिर से टल जानी चाहिए।

-कोसिस मैं करूँगा, सरकार!

-अच्छा, तो जा, होशियारी से काम करना। मैं तुझे भी ख़ुश कर दूँगा।

मुस्कराता हुआ भिखरिया चला गया, तो अनायास ही मन्ने के मुँह से निकल गया, स्साला! ...कैसा सीधा, सच्चा और स्वामिभक्त बनता है! मालूम है मुझे सब तुम लोगों की मिली भगत! ... ख़ैर, यह जंजाल कटे, तो मैं तुममें से एक-एक को बताऊँगा! ...फिर अचानक ही उसे ऐसा लगा कि कहीं यह सब झूठ तो नहीं है? कहीं यह कोई षड्यन्त्र तो नहीं है? ...और मन्ने में एक दूसरी तरह की व्याकुलता व्याप गयी, कैसे सचाई मालूम हो? ...अल्हड़ बसमतिया अगर अकेले में मिल जाय, तो उसे पोल्हाकर उसके मुँह से कुछ भी निकालना कोई कठिन बात नहीं...मन्ने ने सोचा था कि आगे वह उससे कभी भी न मिलेगा, लेकिन अब उससे मिलने के लिए वह आतुर हो उठा।

सती मैया का चौरा भाग 8 - Satee Maiya Ka Chaura Part 8

1. सती मैया का चौरा भाग 1
2. सती मैया का चौरा भाग 2
3. सती मैया का चौरा भाग 3
4. सती मैया का चौरा भाग 4
5. सती मैया का चौरा भाग 5
6. सती मैया का चौरा भाग 6
7. सती मैया का चौरा भाग 7
8. सती मैया का चौरा भाग 8
9. सती मैया का चौरा भाग 9
10. सती मैया का चौरा भाग 10
11. सती मैया का चौरा भाग 11